षोडश ग्रन्थ

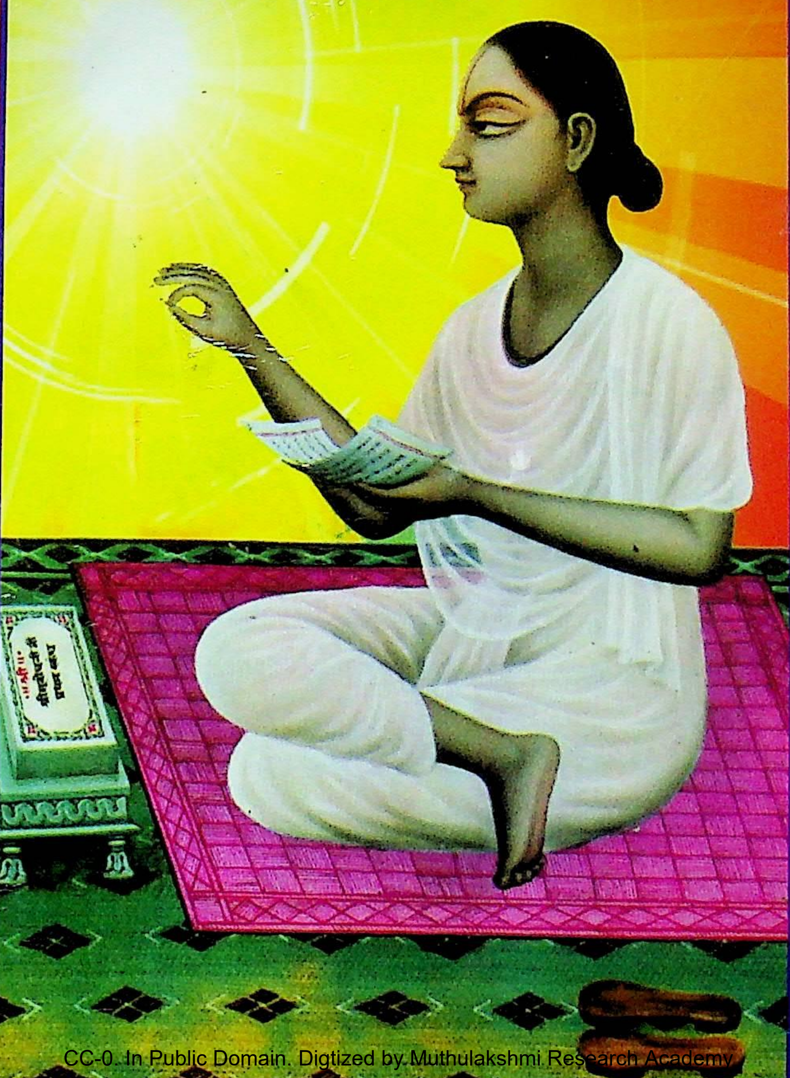

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जगद्गुरु

श्रीमद्वल्लभाचार्य वंशावतंस

आचार्यवर्य गोस्वामितिलकायित

श्री १०८ श्रीइन्द्रदमनजी (श्रीराकेशजी) महाराज

नाथद्वारा

जन्मतिथि फाल्गुन शुक्ल ७ प्राकट्य

विक्रम संवत् २००६ २४ फरवरी सन् १९

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

॥ श्री हरि: ॥

षोडश ग्रन्थ

राष्ट्र भाषा अनुवादक
त्रिपाठी नारायण रामकृष्ण जी शास्त्री

★

संशोधक
त्रिपाठी यदुनन्दन श्रीनारायणजी शास्त्री
अध्यक्ष विद्या - विभाग

★

प्रकाशक
विद्या विभाग मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा

पंचमावृत्ति
प्रति 2000

संवत् २०७४
न्योछावर 15/- रू.

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

प्रस्तावना

अखण्ड भूमण्डलाचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य ने सामान्य लोगों के लिये अपने सिद्धान्त के ज्ञान हेतु छोटे–छोटे सोलह ग्रन्थों का निर्माण किया। सम्प्रदाय में इनको षोडश ग्रन्थों के नाम से जाना जाता है। इन ग्रन्थों पर विद्वान गोस्वामी बालकों की संस्कृत भाषा में अनेक टीकाएं उपलब्ध हैं किन्तु जिनको संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं है वे इन ग्रन्थों का लाभ नहीं उठा सकते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन पू.आ.वर्य्य गोस्वामी तिलक श्री १०८ श्री गोविन्दलाल जी महाराज श्री ने पण्डित श्री नारायण रामकृष्णजी शास्त्री को आज्ञा प्रदान कर मूल ग्रन्थ के श्लोकों का हिन्दी भावार्थ एवं संक्षेप में आशय लिखने के लिये प्रेरित किया। श्री शास्त्रीजी सम्प्रदाय के मूर्धन्य एवं लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान रहे थे।

आपने अणुभाष्य, श्री सुबोधिनी जी एवं शुद्धाद्वैत मार्तण्ड तथा वेदान्त चिन्तामणि के भी हिन्दी अनुवाद किये। षोड़श ग्रन्थ के प्रथम संस्करण की समाप्ति पर पूज्यपाद आचार्य वर्य गोस्वामी कुल कौस्तुभ तिलकायित श्री 108 श्री राकेश जी (श्री इन्द्रदमनजी) महाराज श्री ने विद्या विभाग के अनुरोध पर पुनः षोडश ग्रन्थ को हिन्दी भाषानुवाद सहित प्रकाशित करने की आज्ञा प्रदान की। इससे सामान्य जन जो समयाभाव से अधिक श्रम नहीं करना चाहते हैं वे सभी इससे लाभान्वित होंगे।

निवेदक

यदुनन्दन श्रीनारायणजी शास्त्री

अध्यक्ष

विद्या – विभाग

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

श्री आचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य
कृत ग्रन्थ सूची

ब्रह्मसूत्र पर अणुभाष्य

17 सेवाफल

16 निरोध लक्षण

15 सन्यास निर्णय

14 पंच पद्यानि

13 जलभेद

12 भक्तिवर्द्धिनी

11 चतुःश्लोकी

10 कृष्णाश्रय

9 विवेक धैर्याश्रय

8 अन्तः करण प्रबोध

7 नवरत्नम्

6 सिद्धान्त रहस्य

5 पुष्टि प्रवाह मर्यादा

4 सिद्धान्त मुक्तावली

3 बालबोध

2 श्री यमुनाष्टक

1 श्री वल्लभाष्टक

श्रीमद् भागवत पर श्री सुबोधिनी

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

श्री पुरुषोत्तम सहस्रनाम
सेवाफल विवरण
परिवृढ़ाष्टक
श्री मधुराष्टक
तत्त्वदीपनिबन्ध
पत्रावलम्बन
श्रीभागवतैकदशम
स्कंधार्थ निरूपण कारिका
श्रीकृष्ण प्रेमामृत
श्रीनन्द कुमाष्टक
श्री गिरिराज धार्याष्टक
श्री कृष्णाष्टक
श्री गोपीजन वल्लभाष्टक
पंचश्लोकी
न्यासादेश
दशम् स्कंधानुक्रमणिका
गायत्री भाष्य
गायत्री व्याख्या
त्रिविध लीला नामावली
श्रुति गीता
पूर्व मीमांसा कारिका
श्री भगवत् पीठिका
सुबोधिनी ग्रन्थ स्कंध कारिका
शिक्षा श्लोक

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

"श्रीहरिः"

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	अध्याय	पृष्ठ
1.	यमुनाष्टक विशेषवक्तव्य	9
2.	बाल बोधका संक्षेप में आशय	9
3.	सिद्धान्त मुक्तावली का तात्पर्य	10
4.	पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद में प्रतिपादित विषय का संक्षिप्त आशय	13
5.	सिद्धान्त रहस्य में प्रतिपादित विषय का तात्पर्य	14
6.	नवरत्न का तात्पर्य	16
7.	अन्तःकरण प्रबोध का तात्पर्य	16
8.	विवेक धैर्याश्रय का संक्षिप्त विवेचन	17
9.	कृष्णाश्रय का संक्षिप्त विवेचन	18
10.	चतुःश्लोकी का तात्पर्य	18
11.	भक्तिवर्धिनी का अभिप्राय	18
12.	जलभेद ग्रन्थ	19
13.	पंच पद्य तात्पर्य	19
14.	संन्यास निर्णय का सार	20
15.	निरोध का तात्पर्य	21
16.	सेवाफल का तात्पर्य	22
	श्री वल्लभाष्टक	23
17.	यमुनाष्टक	29
18.	बालबोध	36
19.	सिद्धान्त मुक्तावली	44
20.	पुष्टि प्रवाह मर्यादा	53
21.	सिद्धान्त रहस्य	64
22.	नवरत्न	68
23.	अन्तःकरण प्रबोध	72
24.	विवेक धैयाश्रय	76
25.	कृष्णाश्रय	84
26.	चतुःश्लोकी	88
27.	भक्तिवर्धिनी	90
28.	जलभेद	94
29.	पंच पद्यानि	104
30.	संन्यास निर्णय	106
31.	निरोध लक्षण	114
32.	सेवाफल	122
33.	ति. वंशावली	126
34.	अष्टाक्षर महामन्त्र	133

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

।।श्रीहरिः।।

ग्रन्थ परिचय

अखण्ड भूमण्डलाचार्य महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य ने जिस प्रकार विद्वानों के लिये अणुभाष्य–निबन्ध–सुबोधिनी आदि ग्रन्थों का निर्माण किया। उसी प्रकार सामान्य लोगों को अपने सिद्धान्त का ज्ञान कराने के लिये छोटे छोटे इन सोलह ग्रन्थों का निर्माण किया। सम्प्रदाय में ये षोडश ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन षोडश ग्रन्थों के ऊपर भी विद्वान् गोस्वामिबालकों ने संस्कृत भाषा में अनेक टीकाएं की हैं। परन्तु जिनको संस्कृतभाषा का ज्ञान नहीं है वे उन टीकाओं से लाभ नहीं उठा सकते। उनको तो मूलश्लोकों का हिन्दी भावार्थ क्या है इतना ही अपेक्षित है। अतः पूज्यपाद आचार्यवर्य गोस्वामि तिलकायित श्री १०८ श्री गोविन्दलाल जी महाराज श्री की आज्ञा से इन षोडश ग्रन्थों का हिन्दी में भावार्थ तथा ग्रन्थ के आरम्भ में उन का आशय संक्षेप में लिखा गया है। इस से सामान्य लोगों को तो लाभ होगा ही किन्तु जो अधिक श्रम नहीं करना चाहते तथा जिनके पास समयाभाव हैं वे भी इससे लाभ उठा सकेंगे।

इन षोडश ग्रन्थों के क्रम के विषय में श्रीद्वारकेशी महाराज ने जो कारण बताये है वह भी अवश्य जानने योग्य है।

उनने लिखा है :– सर्वतः प्रथम यमुनाष्टक क्यों है। वह इस लिये है कि इसका पाठ करने से भगवान मुकुन्द में अनुराग होता है पापों का क्षय होता है स्वभाव पर विजय एवं मुरारि भगवान्

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रसन्न होते हैं। उन को प्रसन्न करने के लिये जीव के पास नमन के अतिरिक्त साधन ही क्या है। भगवान् को तो किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं है। ऐसा मन में विचार कर आचार्यचरणों ने जीव के अधिकार की सिद्धि के लिये यमुनाष्टक का निर्माण किया। जब अधिकार सिद्ध हो जाता है उस के अनन्तर जीव का कर्त्तव्य क्या है उसके लिये आपने बालबोध में संक्षेप से पुरुषार्थ का निरूपण किया। पुरुषार्थ का ज्ञान हो जाने के अनन्तर साध्य साधन भाव से सेवा के आभ्यन्तर और बाह्य इस तरह के दो भेद बताये। सेवा का निर्वाह बराबर होता रहे इसके लिये सिद्धान्तरहस्य का निर्माण किया इस ग्रन्थ में यह बताया कि सेवा के उपयोग में आने वाले बाह्य पदार्थों की शुद्धि भगवान् को सब वस्तुओं के समर्पण के बिना नहीं हो सकती। तदनन्तर आन्तर पदार्थों की शुद्धि के लिये नवरत्न ग्रन्थ का निर्माण किया। इस प्रकार बाह्य और आन्तर शुद्धि का उत्पादन करके अपने ही अन्तःकरण को सम्बोधित किया। उसका निर्वाह बराबर हो इसके लिये विवेकधैर्याश्रय की रचना की इसमें यह बताया कि भगवान् का आश्रय चित्तदोष के कारण स्थिर नहीं हो सकता ऐसा विचार जब आया तो कृष्णाश्रय नामक सूक्ष्म ग्रन्थ का निरूपण किया। जब आश्रय की स्थिरता सिद्ध हो गई तब पुरुषार्थ क्या है उसका निरूपण आपने अपने ही मन को लक्ष्य बनाकर चतुःश्लोकी ग्रन्थ में किया है। इसके अनन्तर कृपानिधि श्रीमहाप्रभु ने तीन मार्गों का बोध कराने के लिये पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रन्थ का निर्माण किया। यह ग्रन्थ बहुत ही गूढ है। इस तरह भक्तिप्रकरण को दृढ करके भक्ति की वृद्धि किस प्रकार से हो उसके लिये भक्तिवर्द्धिनी का निर्माण किया।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भक्ति को बढ़ाकर जलभेद कथन (मिष) से भक्तों का लक्षण बताया और पञ्चपद्यानि का निर्माण भी इसी के लिये किया। भक्तिवर्द्धिनी में यह कहा था कि त्याग ही भक्ति को बढ़ाता है अतः उस त्याग का विवेचन करने के लिये संन्यासनिर्णय ग्रन्थ का निर्माण किया। भगवान में भाव सिद्धि हो इसके लिये निरोधलक्षण ग्रन्थ का निर्माण किया। इसमें व्रजस्थित नन्द आदि के भावों का निरूपण किया। इन पन्द्रह ग्रन्थों से भाव की सिद्धि करके भाव में होने वाले उद्वेग एवं प्रतिबन्धों का निवारण साधनों द्वारा करना चाहिये तब उसका जो फल होता है वह सेवाफलनिरूपण ग्रन्थ में कहा है। सेवाफल ग्रन्थ कठिन होने से उसकी व्याख्या भी स्वयं आचार्यचरणों ने की हैं। ऐसा क्रम श्रीद्वारकेशजी महाराज ने बताया है।

इस ग्रन्थ के श्लोकों के भावानुवाद में अथवा संशोधन आदि में जो त्रुटियां रह गई हो उसे सहृदय महानुभाव सुधारलेने की अथवा सूचित करने की कृपा करेंगे जिससे अग्रिम संस्करण में उसका सुधार हो सके।

जीवस्वभावतो दोषाः सम्भवन्त्येव कुत्रचित्।

सद्‌गुण ग्राहिणः सन्तो नैव गृह्णन्ति तान् पुनः।।

यदुनन्दन त्रिपाठी
अध्यक्ष
विद्या – विभाग

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

1. विशेष वक्तव्य-

इस यमुनाष्टक स्तोत्र में आचार्यचरणों ने श्रीयमुनाजी के स्वरूप का तथा माहात्म्य प्रतिपादन किया है। श्रीयमुनाजी आठ प्रकार के ऐश्वर्य को देने वाली है उन आठ प्रकार के ऐश्वर्यो का वर्णन क्रम से इन आठश्लोकों में किया है (1) सम्पूर्ण सिद्धि को देना (2) भगवद्भाव को बढ़ावा (3) भगवान् से सम्बन्ध कराने में जो प्रतिबन्ध आवें उनको हटाकर भगवान् का अनुभव होने में जिस प्रकार की शुद्धि की योग्यता होनी चाहिये उसका सम्पादन करना और भुवन को पवित्र करना (4) श्रीयमुनाजी में भगवान् के समान धर्म होने से बिना किसी आयास के भगवान् के साथ सम्बन्ध कराना (5) भगवान् के जो भक्त हैं उनके दोषों को मिटाना (6) भगवदीयों में उत्कर्ष (श्रेष्ठता) करना (7) भगवान् का प्रिय बनाना (8) शरीर में अलौकिकता की सिद्धि करना ये आठ प्रकार के ऐश्वर्य लीला सृष्टि वालों के ही लिये हैं।

2. श्रीबालवोधका आशय संक्षेप में -

इस बालबोध में यह बताया है कि पुरुष चार पदार्थो को चाहता है धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष। शास्त्रों में इसीलिये उनको पुरुषार्थ कहते हैं। इन चारों का वर्णन (विचार) वेदों में किया गया है तथा ऋषियों ने भी किया हैं। वेदों के विचार के विषय में तो बोलने का किसी को अधिकार नहीं है क्योंकि वह विचार तो ईश्वरकृत है ऋषियों ने जो इन पुरुषार्थो के विषय में विचार किया है उस विषय में आचार्यचरण विचार करते है उनमें भी धर्म का निर्णय तो मनुस्मृति आदि में है और अर्थशास्त्र का विचार कामन्दकीय आदि नीतिशास्त्र में है और कामशास्त्र का विचार

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

वात्स्यायन कामसूत्र ग्रन्थ में है अब बचता है केवल मोक्ष पुरुषार्थ में भक्तों के लिये धर्म–अर्थ और काम इन पुरुषार्थों की तो आवश्यकता नहीं है मोक्ष भक्तों के लिये आवश्यक है। मोक्षरूप पुरुषार्थ का विचार योगशास्त्र सांख्यशास्त्र और पुराणों में भी किया है इनमें निरीश्वर सांख्य को छोड़कर बाकी सबका एक ही फल है। मोक्ष की प्राप्ति एक तो साधनों के द्वारा एवं एक पराश्रय (किसी के आश्रय) से ही होती है। सभी ब्रह्मा–विष्णु और शिव का आश्रय लेते है। उनमें ब्रह्माजी के रूप से पूजित है अतः शिव और विष्णु ये दोनों जगत् का हित करने वाले है इनका कार्य स्थिति और संहार करना है यद्यपि ये दोनों भोग मोक्ष दे सकते है किन्तु भोग देने का काम शिव का है और मोक्ष देने का काम विष्णु का है। इसलिये मोक्ष विष्णु से सुलभ होता है और भोग शिव से सुलभ है परन्तु अत्यन्त जो प्रिय होता है उसे अपने नियत कार्य के विपरीत भी अर्थात् शिव मोक्ष और विष्णु भोग भी देते हैं। जब भक्त आत्मसमर्पण कर देता है तब वह उनका तदीय हो जाता है। यदि तदीय नहीं होता है तथापि उनका आश्रय और तदीयपन की समझ होती है और अपने वर्ण और आश्रम के धर्मों का पालन करता रहता है तो ठीक है ऐसा यदि नहीं करता है तो उसके ऊपर दुगुना भार हो जाता है।

3. सिद्धान्त मुक्तावली का तात्पर्य–

जीव का मुख्य धर्म भगवान् की सेवा करना है। वह मानसी होनी चाहिये अर्थात् मन प्रभु में तन्मय हो जाय। उस तन्मयता की सिद्धि के लिये शरीर तथा धन दोनों से ही सेवा करे। यदि कोई किसी को धन देकर सेवा कराता है उसे वित्तजा सेवा नहीं कहते

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इसी प्रकार कोई धन लेकर शरीर से सेवा करता हे उसे तनुजा नहीं कहते। वह सेवा भी कृष्ण की ही करनी चाहिये क्योंकि वे ही परब्रह्म है। अक्षर ब्रह्म परब्रह्म पुरुषोत्तम का निवास स्थान है उस अक्षर ब्रह्म के दो रूप है एक तो यह जगत्‌रूप है और दूसरा उससे विलक्षण सच्चिदानन्दरूप है। यद्यपि अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम एक ही है किन्तु अक्षर ब्रह्म गणितानन्द है और पुरुषोत्तम पूर्णानन्द है। जगत् के विषय में आचार्यों की अलग–अलग धारणाएं है। कोई जगत् को मायिक असत्य मानते है। कोई इसे त्रिगुणात्मक मानते हैं परन्तु आचार्य चरण का सिद्धान्त तो यह है कि यह जगत् भगवान् का कार्य है और सत्य है मिथ्या नहीं है। क्योंकि श्रुति में कहा है कि वह ब्रह्म ही जगत् के रूप में बन गया है। आचार्य चरणों ने पुरुषोत्तम, अक्षर ब्रह्म, जगत् तीनों की एकता होने पर भी उनमें किसी प्रकार का अन्तर है इसे गंगाजी के हृष्टान्त से समझाया है। गंगाजी जल के रूप में सबको दीखती है। उसी प्रकार यह अक्षर ब्रह्म जगत् के रूप में सबको दिखाई देता है और जिस प्रकार तीर्थरूप माहात्म्य से युक्त गंगाजी सेवा करने वाले को भोग और मोक्ष देती है उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म भी इस जगत् से विलक्षण माहात्म्य से युक्त है और जिस प्रकार कभी कभी गंगाजी में जिसकी भक्ति का उत्कर्ष होता है उसे गंगाजी के आधिदैविक देवतारूप का भी दर्शन होता है और वह दर्शन जल में ही अभेद बुद्धि से होता है इसी प्रकार अत्यन्त भक्ति युक्त भक्त को भी पुरुषोत्तम के दर्शन होते है। परन्तु इस गंगा के हृष्टान्त से भगवान् में कुछ विलक्षणता है गंगाजी के तो जल की आराधना से ही सब भोग मोक्ष आदि प्राप्त होते हैं परन्तु जगत् रूप ब्रह्म की आराधना नहीं की जाती है आराधना तो भगवान् पुरुषोत्तम की ही

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

की जाती है। अन्यथा स्त्री पुत्र आदि की आराधना भी भगवदाराधना हो जायगी। यह जगत् सत्व, रज और तम इन गुणों के भेद से तीन प्रकार का है और उनके भजनीय देवता भी ब्रह्मा, विष्णु और शिव है इन्हें देवता माने गये हैं। परन्तु जो ब्रह्मज्ञानी मुक्त जीव हैं उसके लिये तो भजन करने योग्य श्रीकृष्ण ही है। यद्यपि सात्विक आदि तीन प्रकार के लोक में इन तीन देवताओं की आराधना से उनके भक्तों के मनोरथ की पूर्ति होती है परन्तु आत्मा के लिये भजनीय तो निरवधि आनन्दरूप श्रीकृष्ण ही है और उन्हीं से सब मनोरथों की पूर्ति होती है।

इसलिये ब्रह्मवाद से कृष्ण में अपने अन्तःकरण को लगाना चाहिये। जैसे गंगा से दूर रहने वाले को चाहे हुए जल आदिका दर्शन प्राप्त नहीं होता और दुःखी होता है। उसी प्रकार जो संसारी जीव है वह दुःखी रहता है। अर्थात् जो लौकिक कामना से भगवान् कृष्ण का भजन करता है वह दुःखी रहता है किन्तु दुःख की उपेक्षा करके भगवान् की सेवा करता ही रहता है तो उसका अहन्ता ममता रूप संसार छूट जाता है।

ज्ञान के अभाव वाला पुष्टिमार्गीय भागवत के श्रवण पठन आदि में तत्पर होता हुआ पूजा उत्सव आदि में लगा रहे और जो मर्यादा मार्गीय है उसे गंगा जी के तीर पर रहकर श्री भागवत की आराधना में तत्पर रहना चाहिये। पुष्टिमार्गीय जीव के लिये कहां रहना यह कोई नियम नहीं जहां भी भगवान् की इच्छा हो वे जहां रखना चाहे वहीं रहे। दोनों को एक सा ही फल प्राप्त होगा। परन्तु यदि भक्ति नहीं होगी और कर्म दुष्ट होंगे तो उस स्थान से उनका पतन हो जायेगा अतः सर्वदा सावधान रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

4. पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद में प्रतिपादित विषय का संक्षेप-

लोक में पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा में तीन मार्ग अलग–अलग है। भगवान् के अनुग्रह का नाम पुष्टि है। वैदिकमार्ग मर्यादामार्ग है तथा देखा देखी चलना यह प्रवाह मार्ग है। भगवान् ने कृपा करके जिस सरल भक्तिमार्ग का उपदेश दिया है। वह अनुग्रहमार्ग या पुष्टिमार्ग अलग ही है। मर्यादामार्ग में वेदों के अनुसार साधन किये जाने से वह भी अलग हैं और जिसमें केवल उत्पन्न होना और मरना ये ही दो बातें होती है वह प्रवाहमार्ग हैं पुष्टिमार्ग में जीव का पुरुषोत्तम के साथ सायुज्य होने से और मर्यादा मार्ग में जीवका अक्षर ब्रह्म के साथ सायुज्य होने से सान्त है किन्तु प्रवाहमार्ग की जब तक सृष्टि चलती रहती है तब तक अन्त नहीं होता। पुष्टिमार्ग में मुख्य साधन प्रभु कृपा है और मर्यादा में वेदोक्त विधि साधन है। प्रवाह में काम्यकर्म, असत्कर्म साधन है। पुष्टिमार्ग में प्रभुस्वरूप ही फल है। मर्यादा में मोक्ष फल है और प्रवाह में तो संसार में चक्कर काटते रहना ही फल है।

पुष्टिमार्गीय जीवों में और भगवान् में स्वरूप चिह्न और ऐश्वर्य आदि गुणों से कोई भेद नहीं है किन्तु स्वयं भगवान् की जितने भेद से लीला हो सके उतना भेद रखते हैं। इसी से तो आचार्य चरणों ने पुष्टिमार्गीय जीव का प्रभु से तादात्म्य बताया है। पुष्टिमार्गीय जीवों को भगवान् का सम्बन्धी बताया है।

पुष्टिमार्गीय जीवों में भी शुद्धपुष्टिमार्गीय और मर्यादा आदि से मिश्रित पुष्टिमार्गीय ऐसे दो भेद हैं। शुद्ध पुष्टिमार्गीय जीव की उपलब्धि तो अत्यन्त दुर्लभ है। सूक्ष्म रूप से मिश्रित पुष्टिमार्ग में तीन भेद हैं विस्तार में तो अनन्त भेद हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पुष्टिमार्गीय जीवों के लिये लीलासहित पुरुषोत्तम ही फल है। भगवान् के अनन्तरूप है इसलिये पुष्टिमार्गीय जीवों के स्नेह के तारतम्य के कारण स्वरूप के तारतम्य द्वारा अनेक अवतार रूप से प्रकट होकर उन्हें फल देते हैं। मर्यादामार्गीय जीवों में भी ज्ञानी, भक्त एवं ज्ञानीभक्त आदि अनेक प्रकार हैं। साधन भी अनेक है इनका अक्षर के साथ एक रूप हो जाना अथवा पुरुषोत्तम के साथ सायुज्य होना फल है।

पुष्टिमार्गीय एवं ज्ञानमार्गीय उत्कृष्ट जीव भी लोकरक्षार्थ कापट्य से वैदिक और लौकिक कर्म करते हैं। जो जीव सभी मार्गों से थोड़ा थोड़ सम्बन्ध रखते हैं उन्हें चर्षणी (भ्रान्त) कहते हैं। इनकी वास्तविक रूचि किसी में नहीं होती अतः इन्हें खण्डशः फल होता है। ये प्रवाही जीवों के समान ही हैं। जो काम्यकर्म करते हैं वे भी प्रवाही जीवों के समान ही हैं।

आसुरजीवों के अनेक भेद है उनमें अज्ञ और दुर्ज्ञ ये भेद मुख्य हैं। गीता में जिनका वर्णन किया है वे दुर्ज्ञ आसुर हैं और जो इनके संसर्ग के कारण आसुर बन गये हैं वे अज्ञ आसुर हैं। अज्ञ आसुर भगवान् की इच्छा से आसुर कुल में उत्पन्न होते हैं वास्तव में वे आसुर नहीं होते। वास्तव में तो वे ज्ञानी या भक्त होते हैं किन्तु भगवान् की क्रीड़ा करने की इच्छा से आसुर कुल में उत्पत्ति हो जाती है। ऐसे अज्ञ जीव भगवद्भक्तों के संग से, प्रभु के स्वरूप से अथवा स्मरण के द्वारा मुक्त हो जाते हैं।

5. सिद्धान्तरहस्य में प्रतिपादित विषय का तात्पर्य–

इस सिद्धान्त रहस्य के केवल साढे आठ ही श्लोक हैं और आचार्यचरणों ने इसका नाम सिद्धान्त रहस्य रखा है वास्तव में

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

यह सिद्धान्तों का रहस्य ही है। जीव भगवदीय वस्तुओं को अपनी मान लेता है इस प्रकार उसका यह मानना सहज दोष है अर्थात् जब से उसकी जीव संज्ञा हुई है तभी से उसके साथ यह दोष लग गया है। सहज दोष तो उस में रहता ही है उसके साथ में फिर देशदोष, कालदोष, संयोगजदोष और स्पर्शजदोष और आ जाते हैं स्वतः दोषों की निवृत्ति करने की शक्ति जीव में नहीं हैं।

जब अपनी शक्ति कुछ काम नहीं देती तब वह किसी समर्थ का आश्रय लेता है किन्तु ये जीव के अन्दर जो दोष है उनकी निवृत्ति किसी सामान्य से नहीं हो सकती। अतः उसकी जिससे उत्पत्ति हुई उसी का आश्रय उसके इन दोषों को निवृत्त कर सकता है। प्रबल दोषों की निवृत्ति के लिये पूरे रूप से आश्रय होना चाहिये अपनी जो भी कोई वस्तु है उसे तथा स्वयं अपने को भी वो जब ब्रह्म को समर्पित कर देता है तब उसमें निर्दोषता आ जाती है जैसे गंगाजल में बाहर का दूषित जल मिल जाता है तो भी सब उसे गंगाजल ही कहते हैं।

जब जीव सब प्रभु को समर्पित कर देता है तो उसका व्यवहार कैसे चलेगा। चाहे प्रभु को समर्पित करो या न करो वस्तु तो सब भगवान् की ही है अतः जैसे कोई किसी का दास होता है उसका किसी वस्तु पर अधिकार नहीं होता है सब वस्तु स्वामी की ही होती है किन्तु स्वामी उसके पोषण की व्यवस्था स्वयं करता है इसी प्रकार सब वस्तुओं पर वह अपनी ममता हटाकर प्रभु को समर्पित कर दो जिससे सब वस्तु निर्दोष हो जायगी फिर उनका उपयोग प्रभु के प्रसादरूप से करो। संक्षेप में यही इस ग्रन्थ का तात्पर्य है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

6. नवरत्न का तात्पर्य -

इस ग्रन्थ का नाम "नवरत्न" इसलिये रखा है कि इस में कहे गये नौ श्लोक रत्न के समान है। जिनने आत्मा के साथ आत्मीय वस्तु का निवेदन भगवान् को कर दिया है उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उसे इसका भी विचार नहीं करना, मुझे चाहिये कि भगवान् ने मुझे स्वीकार किया है या नहीं भगवान् तो अनुग्रह मार्ग में स्थित हैं इसलिये प्रवाही जीवों की जैसी स्थिति नहीं करेंगे। भगवान् सर्वेश्वर और सर्वात्मा हैं वे जो कुछ करेंगे अपनी इच्छा से ही करेंगे और जीव की भलाई के लिये करेंगे। क्योंकि भगवान् तो अन्तर्यामी हैं जीव के मन की सब कुछ जानते हैं।

7. अन्तःकरण प्रबोध का तात्पर्य -

इस अन्तः करण प्रबोध ग्रन्थ से आचार्य चरणों ने यह शिक्षा दी है कि सब से श्रेष्ठ दोषवर्जित भगवान् कृष्ण ही है उन्हीं की सेवा करनी चाहिये। जीव को यह समझना चाहिये कि जब मैंने आत्मसमर्पण नहीं किया था उस समय उत्तम नहीं था तो अब मेरे में उससे अधिक अधमता क्या हो सकती है। जीव भगवान् का दास है और प्रभु स्वामी है। इसलिये सेवक को स्वामी की आज्ञा का पालन करना चाहिये स्वामी (भगवान् भी अपने सेवक का काम स्वयं करेंगे। यदि जीव का कोई अपराध भी बन जाय तो प्रभु से क्षमा याचना करनी चाहिये। प्रभु सब क्षमा कर देंगे वे लौकिक स्वामियों की तरह नहीं है। देह यदि स्वस्थ है तो उसको भगवत्सेवा में लगाये ही रखना चाहिये अन्यथा भगवान् अप्रसन्न होंगे।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

8. विवेक धैर्याश्रय का संक्षिप्त विवेचन -

भगवान् के भक्त के लिये विवेक धैर्य और आश्रय का होना अत्यावश्यक है। भगवान् इच्छा से ही सब कुछ करेंगे क्योंकि स्वामी के अभिप्राय का ज्ञान तो हमें है नहीं इसलिये उनसे प्रार्थना व्यर्थ है स्वामी की अधीनता की भावना रखकर अभिमान का त्याग करना भगवान् की सेवा सामग्री के विषय में यदि कोई स्वप्न में या अन्तःकरण में कार्य आज्ञा हो तो उसके अनुसार प्रभु की सेवा करना धनके संकोच में ऋण आदि लेकर मनोरथ आदि करना ऐसा हठ न करें इसे विवेक कहते हैं।

मरण पर्यन्त आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों ही प्रकार के दुःखों को सहन करना भगवदिच्छा से यदि दुःख का निवारण होता हो तो उसके लिये दुःख सहन करने का आग्रह न करना अपनी ओर से इन्द्रियों के विषयों को शरीर, वाणी और मन से त्याग देना उसे मैं त्याग नहीं सकता हूँ ऐसी कायरता का सहारा न ले अशक्य में भी भगवान् का सहारा ले इसे धैर्य कहते हैं।

मेरे इसलोक के और परलौक के जितने कार्य हैं वे सब हरि ही करेंगे इस प्रकार हरि के शरण की भावना करें। भक्त का द्रोह अपने से हों जाय या भक्ति का अपने में अभाव हो कोई अपना अपमान करदे तो भी सब बातों में भगवान् के शरण की ही भावना करें। अन्य देवता का भजन या स्वतः अन्य देवता के यहाँ जाना और किसी भी काम के लिये भगवान् से या अन्य देवता से प्रार्थना न करना भगवान् के ऊपर कभी अविश्वास न करना जो मिलजाय उसी में संतोष करना सब जगह भगवान के शरण की ही भावना

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करना आश्रय कहा जाता है। क्योंकि कलियुग में आश्रय के अतिरिक्त सभी मार्ग कठिन हैं।

9. कृष्णाश्रय का संक्षिप्त विवेचन :-

कलियुग के कारण गंगाजी आदि श्रेष्ठ तीर्थ, सज्जन लोग मन्त्र आदि शास्त्र व्रत आदि कर्म सब दूषित हो गये हैं ऐसे समय में श्रीकृष्ण ही रक्षा कर सकते हैं। उनके सिवा अन्य कोई भी रक्षक नहीं है। इसका निरूपण इसमें किया है।

10. चतुःश्लोकी का तात्पर्य

इस चतुश्लोकी ग्रन्थ के चारश्लोकों में आचार्य चरणों ने पुष्टिमार्गीय भक्तों के लिये क्रमशः धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष का वर्णन किया है। प्रभु सेवा ही इस मार्ग में धर्म है। प्रभु श्रीकृष्ण हो धन है। प्रभु के मुखारविन्द का दर्शन ही काम है और सर्वात्म भाव से प्रभु के चरणों का स्मरण और सेवन ही मोक्ष है।

11. भक्तिवर्धिनी का अभिप्रायः-

इस भक्तिवर्द्धिनी ग्रन्थ में भक्ति की वृद्धि कैसे हो इसके उपाय बताये हैं। यद्यपि बीजरूप से भगवान में सबकी भक्ति (प्रेम) होती है किन्तु उस बीज की दृढता त्याग से और भगवान के गुणों के श्रवण कीर्तन से होती है। बीज के दृढ़ करने का प्रकार तो सामान्य रूप से यही है कि घर में ही रहकर अपने वर्णाश्रम धर्मों का पालन करता हुआ भगवान की सेवा कीर्तन करता रहे।

उससे क्रमशः पहले प्रेम होगा प्रेम के अनन्तर आसक्ति उसके अनन्तर व्यसन हो जायेगा। इनके होने को ही शास्त्र में दृढ़ बीज कहा गया है। बीज भावकी दृढ़ता का अभिप्राय यह है कि वह किसी दुःसंग से या कालादि से भी नष्ट नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्नेह होने पर तो जगत से अनुराग का नाश होता है और आसक्ति होने पर घर में अरूचि हो जाती है। उसे ऐसा लगता है कि ये जितने भी घर के लोग हैं या घर की वस्तुएं हैं उनका भगवान् से कोई सम्बंध नहीं है। जब उससे भी ऊपर व्यसनावस्था हो जाती है तबतो वह कृतार्थ ही हो जाता है। व्यसन तक की अवस्था तक पहुँचने वाले को भी घर में नहीं रहना चाहिये। घर का त्याग करने पर भी अपने प्रारब्धवश दु:संग या अन्न दोष आता हो तो जहाँ निरन्तर भगवत्सेवा चलती हो वहाँ रहना चाहिये। और वहाँ भगवदीयों का संग करना चाहिये। यदि ऐसे स्थान में भी दोष की संभावना होतो उस स्थान के समीप या दूर रहे जैसे भी हो चित्त में किसी प्रकार दोषों की उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये। जिसकी सेवा में और भगवान की कथा में दृढ़ आसक्ति होगी तो उसका नाश जीवन में कभी नहीं होगा। बाधा की संभावना होने पर एकान्त में भी नहीं रहना घर में ही रहना चाहिये भगवान सब जगह रक्षा करेंगे।

12. जलभेद ग्रन्थ :-

इस जलभेद ग्रन्थ में बीस प्रकार के जलके भेद बताये हैं भक्तों के भावों का वर्णन उन्हीं के अनुसार किया है। इसका परिचय ग्रन्थ और उसके अर्थ को पढ़ने से ही हो सकेगा।

13. पंच पद्य तात्पर्य :-

इस ग्रन्थ में भगवत्कथा के गुणों के श्रोताओं का वर्णन है। प्रभु के गुण सुनने वाले अनेक प्रकार के हैं उनमें जिनकी प्रभु में दृढ़ आसक्ति है जो लौकिक वैदिक कर्म तथा फल में आसक्ति नहीं रखते हैं वे उत्तम श्रोता हैं।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

14. संन्यास निर्णय का सार : -

कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग ये तीन मार्ग वेदशास्त्र आदि में जीवों के उद्धार के लिये बताये गये हैं इसी प्रकार चार वर्ण और चार आश्रम भी ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम है उसका विचार इस ग्रन्थ में किया है सन्यासाश्रम में सभी कर्मों का त्याग किया जाता है इसलिये कर्म मार्ग में तो सन्यास हो ही नहीं सकता। अब बचते हैं ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग इनमें भी भक्तिमार्ग में श्रवण आदि नौ प्रकार के है वे गृहस्थाश्रम में ही हो सकते हैं। परन्तु यदि घरके लोग सेवा आदि में बाधा पहुंचाते हैं तो भी सन्यास लेना ठीक नहीं क्योंकि सन्यास लेने पर भी कलिकाल में मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये साधन रूप से अथवा साधन की सिद्धि के लिये भक्तिमार्ग में भी सन्यास लेना ठीक नहीं। भक्तिमार्ग में स्नेह पूर्ण प्रभु को प्राप्त करना ही फल है उस फल के लिये यदि भक्तिमार्ग में सन्यास लिया जाता है तो उचित है। क्योंकि स्नेह में दो प्रकार है एक संयोग और दूसरा विरह। यदि विरह का अनुभव करने के लिये सन्यास ग्रहण करते हैं तो ठीक है। परन्तु उस सन्यास में वेश बदलने का या दंड कमण्डलु आदिके धारण की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु स्त्रीपुत्रादि के स्नेहानुबन्ध की निवृत्ति के लिये दण्डग्रहण एवं काषाय वस्त्र का वेश बनाया भी जा सकता है। क्योंकि विरहाग्नि के समान तन्मय बनाने वाला दूसरा साधन नहीं है। जैसे काष्ठ में रहने वाली अग्नि जबतब बाहर प्रकट नहीं होती तब तक वह काष्ठ को अग्निरूप नहीं बना सकती। इसी प्रकार आनन्दमय प्रभु सबके हृदय में विराजमान है परन्तु वे जब तक विरह के द्वारा बाहर प्रकट नहीं होते और बाहर प्रकट होकर अन्दर प्रविष्ट नहीं होते तब तक जीव आनन्दरूप नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सकता। विरह में ही यह शक्ति है कि प्रभु भावना के द्वारा बाहर प्रकट होजाते हैं। तब जीव आनन्दमय हो जाता है। ऐसा फलात्मक त्याग तो भक्तिमार्ग मे भी हो सकता है।

ज्ञानमार्ग में तो सन्यास लेना उचित नहीं है। क्योंकि ज्ञान में साधन की अपेक्षा रहती है। ज्ञान में चित्तशुद्धि आवश्यक है वह चित्तशुद्धि या तो यज्ञादि के द्वारा होती है या भगवान् के गुणों के श्रवण आदि से होती है सर्वत्याग करने पर ये कैसे बन सकेंगे। कलिकाल सब तरह से सन्यास में बाधक है इसलिये तीनों ही मार्ग में सन्यास लेना निषिद्ध है। केवल भक्तिमार्ग में फलात्मक सन्यास है। ऐसा सन्यास प्रभु की कृपा से अपने आप ही होता है साधन के द्वारा नहीं हो सकता है।

15. निरोधलक्षण का अभिप्रायः-

जगत् के जितने पदार्थ एवं स्त्री, पुत्र आदि हैं उनको भूलकर केवल प्रभु में आसक्ति होजाना निरोध कहलाता है वह निरोध कैसे होता है उसके प्रकार इस ग्रन्थ में कहे हैं। दुःख एवं सुख इन दोनों से भी निरोध होता है यदि कोई ऐसी भावना करें कि यशोदाजी को नन्दजी को और गोपियों को भगवानके थोड़े से विरह में कितना दुःख होता था वैसा दुःख मुझे भी कभी होता तो इससे भी भगवान की और हृदय का आकर्षण होता है इसी प्रकार सुख से भी निरोध होता है जैसे गोकुल में गोपियों को और ब्रजवासियों को जो सुख मिलता था वैसा सुख मुझे भी कभी भगवान देंगे।

भगवान में अपना मन रूकजाय (निरूद्ध होजाय) इसके लिये लौकिक वैदिक साधनों का परित्याग करके श्रीभगवान् के गुणों का गान करना चाहिये। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मेरी इन्द्रियों में संसार का आवेश तो नहीं हो रहा है संसारावेश की निवृति के लिये सब इन्द्रियों का सम्बंध भगवान से कर देना चाहिये। जिनका चित्त भगवान के गुणों में आविष्ट हो जाता है उन्हें कभी प्रियवस्तु का विरह और क्लेश नहीं होगा यदि ये होते हैं तो भगवान् की मेरे ऊपर कृपा नहीं है ऐसा समझना चाहिये।

भगवान के स्वरूप की सदा सेवा करनी चाहिये उस स्वरूप में भावना के द्वारा भगवान के दर्शन भगवान का स्पर्श भगवान् की सभी लीलाओं का अनुभव होने लगेगा। भगवान् के गुणों का श्रवण एवं कीर्तन सदा करते रहना चाहिये। जो भगवान की सेवा में अनुराग रखते हों ऐसे स्त्री पुत्र आदि से स्नेह करना यदि उनका सेवामें अनुराग न होतो उनसे उदासीन रहना यदि सेवा में बाधा देते हों तो उनका परित्याग कर देना।

16. सेवाफल का अभिप्रायः-

सेवा से तीन प्रकार का फल प्राप्त होता है उत्तम मध्यम और साधारण। उत्तमफल में तो भक्त में अलौकिक सामर्थ्य हो जाता है जिससे भगवान के साथ गाना भगवान के साथ सभी प्रकार के भोग भोगना मध्यम फल में सायुज्य प्राप्त होता है प्रभु के साथ एकरूप हो जाना या भगवान के साथ गोपों की तरह साथ में रहना। साधारण फल में प्रभु की सेवा का अधिकार प्राप्त होता है।

सेवा समय में यदि चित्त में घबराहट हो या अचानक विघ्न होते हों तथा लौकिक भोगों में आसक्ति होती हो तो भगवान की सेवाफल देने की इच्छा नहीं है ऐसी अवस्था में भागवत आदि का आश्रय लेकर ज्ञान मार्ग में ही निश्चिन्त रहना चाहिये।

बलवान् विघ्न उत्पन्न होते हों तो समझना चाहिये कि भगवान मुझे संसार में ही रखना चाहते हैं। क्योंकि कहा है "आसुर जीवों को निरन्तर में असुर योनि में ही डालता रहता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

||श्रीहरिः||

श्रीवल्लभाष्टक

श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितरसिकानन्दसन्दोहरूप-

स्फूर्जद्रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्तसर्वोऽपिशश्वत्।

तस्यैवात्मानुभावप्रकटनहृदयस्याज्ञया प्रादुरासी-

द्भूमौ यः सन्मनुष्याकृतिरतिकरुणस्तं प्रपद्ये हुताशम्॥1॥

अन्वयः – शश्वत् श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितरसिकानन्दसन्दोह-रूपस्फूर्जद्रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्तसर्वः अपि आत्मानुभाव-प्रकटनहृदयस्य तस्य एव आज्ञया भूमौ यः सन्मनुष्याकृतिः अतिकरुणः प्रादुरासीत् तं हुताशं प्रपद्ये॥1॥

अर्थः – निरन्तर श्रीवृन्दावनचन्द्र (हरि) ने जिसे प्रकट किया है ऐसा जो रसिकों के लिये आनन्द का समूहरूप सुन्दर रास आदि लीलाओं का अमृत समुद्र उसके प्रवाह से सबको जिनने आप्लावित (मग्न) कर दिया है। उन्हीं भगवान् को जब अपने प्रभावकों को प्रकट करने की मन में आयी तब उनकी ही आज्ञासे भूमि के ऊपर जो अच्छे मनुष्य की आकृति में प्रकट हुए अत्यन्त दयालु अग्नि रूप (श्रीवल्लभाचार्य चरण) की मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥1॥

नाविर्भूयाद्भवाँश्चेदधिधरणितलं भूतनाथोदितास-

न्मार्गध्वान्तान्धतुल्यानिगमपथगतौ देवसर्गेऽपि जाताः।

घोषाधीशं तदेमे कथमपि मनुजाः प्राप्नुयुर्नैव देवी-

सृष्टिर्व्यर्था च भूयान्निजफलरहिता देव वैश्वानरैषा॥2॥

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः – हे देव वैश्वानर भवान् चेत् अधिधरणितलं न आविर्भूयात् तदा निगमपथगतौ दैवसर्गेऽपिजाताः मनुजाः भूतनाथोदिताऽसन्मार्गध्वान्तान्धतुल्याः कथम् अपि घोषाधीशं न एव प्राप्नुयुः निजफलरहिता दैवीसृष्टिः व्यर्था च भूयात्।।2।।

अर्थ : हे देव अग्निस्वरूप आप यदि पृथ्वी तल पर प्रकट नहीं होते तो वेदोक्तमार्ग की गति में दैवसृष्टि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी महादेव जी के कहे हुए असत् मार्ग के अन्धकार में अन्धे की तरह किसी भी तरह घोषाधीश (श्रीकृष्ण) को प्राप्त नहीं कर सकते जिससे अपना जो साक्षात् प्रभुप्राप्तिरूप फल से वंचित रह जाते और यह दैवीसृष्टि भी व्यर्थ हो जाती।।2।।

न ह्यन्योवागधीशाच्छ्रु तिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे

यस्मात्साध्वी स्वभावं प्रकटयतिवधूरग्रतः पत्युरेव।

तस्माच्छ्रीवल्लभाख्य त्वदुदितवचनादन्यथा रूपयन्ति

भ्रान्ता ये ते निसर्गत्रिदशरिपुतया केवलान्धं तमोगाः।।3।।

अन्वयः – वागधीशात् अन्यः श्रुतिगणवचसां भावं आज्ञातुं न हि ईष्टे यस्मात् साध्वी वधूः पत्युः अग्रतः एव स्वभावं प्रकटयति तस्मात् हे श्रीवल्लभाख्य! ये त्वदुदितवचनात् अन्यथा रूपयन्ति ते निसर्गत्रिदशरिपुतया भ्रान्ता केवलान्धंतमोगाः।।3।।

अर्थः – वाणी के अधिपति के सिवा दूसरा कोई भी श्रुतिगणों के भाव को जानने में समर्थ नहीं होता है। कारण यह है कि पतिव्रतास्त्री अपने पति के आगे ही अपने भाव (अभिप्राय) को प्रकट करती है। अतः हे श्रीवल्लभाचार्य! जो लोग आपके वचनों के विरुद्ध जो वेदार्थ का निरूपण करते हैं वे स्वभाव से ही

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आसुर–प्रकृति के होने से भ्रान्त है उनके लिये तो अन्धतम की प्राप्ति ही फल है।।3।।

प्रादुर्भूतेन भूमौ व्रजपतिचरणाम्भोजसेवाख्यवर्त्म–
प्राकट्यं यत्कृतं ते तदुत निजकृते श्रीहुताशेति मन्ये।
यस्मादस्मिँस्थितो यत्किमपि कथमपिक्वाप्युपाहर्तुमिच्छ–
त्य [illegible] द्गोपिकेशः स्ववदनकमले चारुहासे करोति।।4।।

अन्वयः – भूमौ प्रादुर्भूतेन ते व्रजपतिचरणाम्भोजसेवाख्यवर्त्म यत् प्राकट्यं कृतं तद् उत निजकृते इति हे श्रीहुताश मन्ये। यस्मात् अस्मिन् स्थितः यत्किमपि कथमपि क्वापि उपाहर्तुं इच्छति अद्धा तद् गोपिकेशः चारुहासे स्ववदनकमले करोति।।4।।

अर्थः भूतल पर प्रकट होकर आपने व्रजपति (श्रीकृष्ण) के चरण कमल की सेवा का मार्ग जो प्रकट किया है। वह निश्चय रूप से निज भक्तजनों के लिये ही प्रकट किया है। हे अग्निस्वरूप! ऐसा मैं मानता हूँ कारण की इस मार्ग में स्थित भक्त कोई भी वस्तु किसी भी प्रकार से कहीं भी रहकर अर्पण करना चाहता है तो उस वस्तु को गोपीजनवल्लभ सुन्दर हासवाले अपने मुखकमल में धारण करते हैं।।4।।

उष्णत्वैकस्वभावोऽप्यतिशिशिरवचःपुञ्जपीयूषवृष्टी–
रार्त्तेष्वत्युग्रमोहासुरनृषु युगपत्तापमप्यत्रकुर्वन्।
स्वस्मिन् कृष्णास्यतां त्वं प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वमेत–
द्यस्मादानन्ददं श्रीव्रजजननिचये नाशकं चासुराग्नेः।।5।।

अन्वयः – उष्णैकत्वस्वभावः अपि आर्त्तेषु अतिशिशिरवच

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पुञ्चपीयूषवृष्टिः उग्रमोहासुरनृषु तापं अपि अत्र कुर्वन् त्वं स्वस्मिन् कृष्णास्यतां प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वं यत् एतत् श्रीव्रजजननिचये आनन्ददं च आसुराग्नेः नाशकम्।।5।।

अर्थः – उष्णता का ही स्वभाव होते हुए भी जो आर्त दीन जन हैं उनके ऊपर आप शीतल वचन रूप वृष्टि करते हैं और जो अत्यन्त उग्रमोह वाले आसुरजन हैं उनके ऊपर एक ही साथ ताप करते हैं आप अपने में कृष्णतापन को प्रकट करते हैं किन्तु अग्निपन को प्रकट नहीं करते हैं क्योंकि आपका यह स्वरूप व्रजजनों के समूह में तो आनन्द देता है और आसुराग्नि को नष्ट करता है।।5।।

आम्नायोक्तं यदम्भोभवनमनलतस्तच्च सत्यं विभो; यत्सर्गादौ भूतरूपादभदनलतः पुष्करं भूतरूपम्।
आनन्दैकस्वरूपात्त्वदधिभु यदभूत्कृष्णसेवारसाब्धि-
श्चानन्दैकस्वरूपस्तदखिलमुचितं हेतु साम्यं हि कार्ये।।6।।

अन्वयः – आम्नायोक्तं यत् अनलतः अम्भोभवनं तत् च सत्यं हे विभो! यत् सर्गादौ भूतरूपात् अनलत भूतरूपं पुष्करं अभवत् यत् अधिभु आनन्दैकस्वरूपात् तु आनन्दैकस्वरूपः कृष्णसेवारसाब्धिः अभूत् तत् अखिलं उचितं हि कार्ये हेतुसाम्यं (भवति)।।6।।

अर्थः – वेद में कहा गया अग्नि में जल का उत्पन्न होना वह सत्य है। हे प्रभो! सृष्टि के आदि में पंचमहाभूत रूप अग्नि से पंचमहाभूतरूप जल उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार इस भूतल पर आनन्द ही जिसका मुख्य स्वरूप है उस भाव से आनन्दैकस्वरूप कृष्णसेवारूप रससमुद्र उत्पन्न हुआ। यह सब उचित ही है क्यों

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कि कार्य में हेतु (कारण) की समानता होती ही है।।6।।

स्वामिञ्छ्रीवल्लभाग्ने! क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः
प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिदृक्षार्तितापे जनेषु।
यत्प्रादुर्भावमाप्नोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्थं
दृष्टेऽप्यस्मिन्मुखेन्दौ प्रचुरतरमुदेत्येव तच्चित्रमेतत्।।7।।

अन्वयः – हे स्वामिन्! श्रीवल्लभाग्ने! भवत क्षणं अपि सन्निधाने कृपातः जनेषु प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिदृक्षार्त्तितापः यत् प्रादुर्भावमाप्नोति इदं उचिततरं यत् तु अस्मिन् मुखेन्दौ दृष्टे पश्चाद् अपि इत्थं प्रचुरतरं उदेति एव तत् एतत् चित्रम्।।7।।

अर्थः – हे स्वामिन्! हे अग्निस्वरूप! आचार्यवर्य आपके क्षणभर के सन्निधान में आपकी कृपा से प्राणों से प्यारे श्रीव्रजाधीश के मुखारविन्द के देखने की इच्छा से मनुष्यों में पीड़ा और ताप होता है ऐसा होना तो अत्यन्त उचित है। परन्तु मुखचन्द्र के देखने के अनन्तर भी जो प्रचुरतर ताप उत्पन्न होता है यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। यहाँ विरोधाभास अलंकार है मुख कमल के देखने की इच्छा से ताप का होना तो ठीक है परन्तु देखलेने पर भी ताप होना यह विरुद्ध है इसका परिहार इस तरह समझना पहले तो ताप उसको देखने की इच्छा से था और अब ताप उसका विरह न हो जाय इस भय से है।।7।।

अज्ञानाद्यन्धकारप्रशमनपटुताख्यापनाय त्रिलोक्या-
मग्नि त्वं वर्णितं ते कविभिरपि सदा वस्तुतः कृष्ण एव।
प्रादुर्भूतो भवानित्यनुभवनिगमाद्युक्तिमानैरवेत्य
त्वां श्रीश्रीवल्लभेमे निखिलबुधजना गोकुलेशं भजन्ते।।8।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः – त्रिलोक्यां कविभिः अपि ते अग्नित्वं अज्ञानाद्यन्धकारप्रशमनपटुंताख्यापनाय सदा वर्णितं वस्तुतः भवान् कृष्णः एव प्रादुर्भूतः इति अनुभवनिगमाद्युक्तमानैः अवेत्य हे श्रीश्रीवल्लभ! त्वां इमे निखिलबुधजनाः गोकुलेशं भजन्ते।।8।।

अर्थः – त्रिलोकी में कवियों ने भी आपका अग्निपन अज्ञान–रूपी अन्धकार को दूर करने में अत्यन्त पटुता को प्रसिद्ध करने के कारण कहा है। वास्तव में तो आप श्रीकृष्ण ही प्रकट हुए हैं। यह बात अनुभव और शास्त्र आदि के प्रमाणों से जानकर हे श्रीवल्लभाचार्य सभी विद्वान् आपको गोकुलेश जानकर ही आप का भजन करते हैं।।8।।

इति श्रीविट्ठलदीक्षितकृतं श्रीवल्लभाष्टकं सम्पूर्णम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

17 यमुनाष्टक

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्दरेणूत्कटाम्।
तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना
सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम्।।1।।

अन्वयः – सकलसिद्धिहेतु मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्दरेणूत्कटां तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीं यमुनां अहं मुदा नमामि।।1।।

अर्थः – आठ प्रकार के ऐश्वर्य तथा पुष्टि मार्गीय समस्त–सिद्धि को देनेवाली और जल के दोषरूप मुरनामक दैत्य को मारने वाले श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में शोभायमान विशेष रेणु है अधिक जिसमें ऐसी, दोनों किनारों के ऊपर लगे हुए वनके सुगन्धवाले पुष्पों से युक्त हे जल जिसका, देव दानव आदि से अथवा दैन्यभाव और मानभाववाले भक्तों से पूजित प्रद्युम्नजी के पिता श्रीकृष्ण की स्वरूपशोभा को धारण करने वाली श्रीयमुनाजी को मैं बड़े प्रेम से प्रणाम करता हूँ।।1।।

कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगण्डशैलोन्नता।
सघोषगति दन्तुराऽसमधिरूढदोलोत्तमा
मुकुन्दरतिवर्द्धिनीजयति पद्मबन्धोः सुता।।2।।

अन्वयः – कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विलासगमनोल्लसत्प्रकगण्डशैलोन्नता सघोषगतिदन्तुरा
असमधिरूढदोलोत्तमा मुकुन्दरतिवर्द्धिती पद्मबन्धोः सुता जयति।।2।।

अर्थः – सूर्यमण्डल में स्थित प्रभु के हृदय में से रसरूप से प्रकट होकर फिर कलिन्द नामक पर्वत के शिखर पर गिरते हुए अनेक प्रवाहों से उज्वल दिखाई देती हुई और विलास पूर्वक गमन करने से शोभायमान और प्रकटरूप से दिखाई देने वाली जो शिलाएं हैं उनसे ऊँची दिखाई देती हुई तथा ध्वनि के साथ गमन करने से कभी ऊँची और कभी नीची होती थी जिससे ऐसा लगता है मानो उत्तम हिन्दोंले में (झूले में) बैठी हो ऐसी श्रीकृष्ण में प्रीति को बढ़ाने वाली श्रीसूर्य पुत्री यमुनाजी सर्वोत्कर्ष से विराजमान है (उनको मैं प्रणाम करता हूँ)।।2।।

भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः।
तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुका-
नितम्बतटसुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम्।।3।।

अन्वयः – भुवनपावनीं भुवं अधिगतां प्रियाभिः इव अनेक स्वनैः शुकमयूरहंसादिभिः सेवितां तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिका-वालुका नितम्बतटसुन्दरीं कृष्णतुर्यप्रियां नमत।।3।।

अर्थः – भगवद्भाव का दान करके तथा शरीर को भगवत् सेवोपयोगी बनाकर सकललोक को पवित्र करने वाली श्रीयमुनाजी भूतल पर प्राप्त हुई। तब प्रिय सखियों की तरह अनेक प्रकार के शब्द करने वाले (बोलने वाले) तोते, मोर और हंस आदि से सेवित और तरङ्गरूप भुजाओं में धारण किये गये कंकण हों उनमें जैसे

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मोती दमकते हों इस प्रकार से चमकती हुई रेती है और दोनों तट नितम्ब (कमर के पीछे के भाग) के समान शोभायमान है ऐसी श्रीकृष्ण की चतुर्थयूथ की स्वामिनी श्रीयमुनाजी को सब लोग प्रणाम करें।।3।।

अनन्तगुणभूषिते शिवविरंचितदेवस्तुते

घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे।

विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते

कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय।।4।।

अन्वयः– अनन्तगुणभूषिते शिवविरंचिदेवस्तुते घनाघननिभे ध्रुवपराशराभीष्टदे विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते कृपाजलधिसंश्रिते सदा मम मनः सुखं भावय।।4।।

अर्थः– यह श्लोक यमुनाजी की स्तुति में एवं प्रभु के अर्थ में भी लगता है यमुनाजी के अर्थ में तो ये सातों पद संबोधन रहेंगे और भगवान् के अर्थ में ये ही सात पद सप्तमी के एक वचन हो जायेगे जैसे – हे अनन्तगुणों से भूषित, शिव ब्रह्मा आदि जिसकी स्तुति करते हैं जो सघन मेघ के समान कान्तिवाली हे ध्रुव! पराशर इनके मनोरथों को पूर्ण करने वाली, विशुद्धमथुरा है तटपे जिसके और जो सम्पूर्ण गोपिणें से आवृत (घिरी हुई) है और कृपा के सागर श्रीकृष्ण के आश्रय में रहने वाली श्रीयमुनाजी आप मेरे मन के आनन्द का विचार करें। जब भगवान् की और इसे लगायेगें तब यह अर्थ होगा कि हे श्रीयमुनाजी! अनन्तगुणों से भूषित, शिव ब्रह्मा आदि जिनकी स्तुति करते हैं जिनका वर्ण सजल मेघ के समान हैं जिन्होंने ध्रुवजी पराशरजी के मनोरथ को पूर्ण किया जो विशुद्ध मथुरा तट पर सम्पूर्ण गोपगोपियों से घिरे

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

हुए है ऐसे कृपा के समुद्र भगवान् में जिस प्रकार सुख हो इस प्रकार मेरे मन को उनमें लगाओ।।4।।

यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियं भावुका

समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम्।

तया सदृशतामियात्कमलजा सपत्नीवय-

द्धरिप्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम्।।5।।

अन्वयः – यया समागमनतः चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियं भावुका सेवतां सकल सिद्धिदा अभवत्। तया सपत्नी इव सदृशतां इयात् यत् कमलजा इयात् तया हरिप्रियकलिन्दया मे मनसि सदा स्थीयताम्।।5।।

अर्थः – जिस यमुनाजी के साथ संगम होने से श्रीगंगाजी भगवान का प्रिय कराने वाली बनी और अपनी सेवा करने वालों के लिय सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाली हुई। उन यमुनाजी से सपत्नी (सौत) की तरह समानता कौन कर सकती है यदि कर सकती है तो केवल श्रीलक्ष्मीजी ही कर सकती है वे ऐसी भगवान् की अत्यन्त प्रिया श्रीयमुनाजी सदा मेरे मन में विराजमान रहें।।5।।

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं

न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः।

यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि

प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः।।6।।

अन्वयः– हे यमुने! सदा नमः अस्तु तव चरित्रं अति अद्भुतं ते पयः पानतः जातु यमयातना न भवति यमः अपि दुष्टान् अपि

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भगिनीसुतान् उ कथं हन्ति तव सेवनात् यथा गोपिकाः तथा हरेः प्रियः भवति।।6।।

अर्थः– हे यमुनाजी! आपको सदा नमस्कार है। आपके चरित्र अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं। आपका जो जलपान करते हैं उनको कभी यमयातना नहीं होती। यमराज भी अपने बहिन के दुष्टपुत्रों को भी कैसे मार सकता है। आपकी सेवा करने से जीव गोपिकाओं के समान भगवान् का प्यारा हो जाता है।।6।।

ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
न दुर्लभतमारतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये।
अतोस्तु तव लालना सुरधुनी परं सुङ्गमा-
त्तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः।।7।।

अन्वयः– हे मुकुन्दप्रिये! तव सन्निधौ मम तनुनवत्वं अस्तु एतावतामुररिपौ रतिः दुर्लभतमा न अतः तव लालना अस्तु सुरधुनी तव एव संगमात् भुवि परं कीर्त्तिता पुष्टिस्थितैः तु कदापि न (कीर्त्तिता)।।7।।

अर्थः– हे हरिप्रिया श्रीयमुनाजी! आपकी सन्निधि मे मेरा शरीर नवीन हो जाय भगवत् लीलोपयोगी हो जाय ऐसा होने से मुरारि भगवान् में प्रेम होजाना अतिदुर्लभ नहीं है। इसीलिये आपकी लालना (स्नेहपूर्वक स्तुति) है श्रीगंगाजी आपके साथ संगम को प्राप्त हुई है उसी से भूतल पर वे अत्यन्त प्रशंसनीय हो गयी हैं। किन्तु पुष्टिमार्गीय जीवतो उनकी प्रशंसा कभी नहीं करते हैं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि प्रिये

हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः।

इयं तव कथाधिका सकलगोपिकासङ्गम–

स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः सङ्गमः।।8।।

अन्वयः– हे कमलजासपत्नि! हे प्रिये! तव स्तुतिं कः करोति यत् हरेः अनुसेवया आमोक्षतः सौख्यं भवति तव कथा इयं अधिका सकलगात्रजैः सकलगोपिकासङ्गमस्मरश्रमजलाणुभिः सङ्गमः भवति।।8।।

अर्थः– हे श्रीलक्ष्मीजी की सपत्नी! (सौत) हे हरि प्रिये! श्रीयमुनाजी! तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है। क्योंकि हरि के पीछे (कारण से) लक्ष्मीजी की जो सेवा करते हैं उन्हें मोक्षपर्यन्त सुख प्राप्त होता है। परन्तु आपकी बात तो इतनी अधिक है। (निराली है) कि प्रभु के सम्पूर्ण अङ्गों से उत्पन्न होने वाले सकल गोपिकाओं के सङ्गम से उत्पन्न हुआ जो प्रस्वेद जल उनकी बिन्दुओं से सङ्गम हो जाता है।।8।।

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा

समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः।

तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्यति

स्वभावविजयो भवेत् वदति वल्लभः श्रीहरेः।।9।।

अन्वयः– हे सूरसूते! तव इदं अष्टकं सदा (यः) मुदा पठति। (तस्य) समस्तदुरितक्षयः भवति मुकुन्दे वै रतिः भवति तया सकलसिद्धयः (भवन्ति) मुररिपुः च सन्तुष्यति स्वभावविजयः भवेत् (इति) श्रीहरेः वल्लभः वदति।।9।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः– हे सूर्यपुत्री श्रीयमुनाजी! तुम्हारे इस अष्टक (आठश्लोकों) को सदा प्रसन्न होकर जो पढ़ता है उसके सब पापों का क्षय हो जाता है और भगवान् मुकुन्द में निश्चित रूप से अनुराग हो जाता है। भगवान् मे जब अनुराग हो जाता है तो उससे सम्पूर्ण सिद्धियां प्राप्त होती है और मुरारि भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। स्वभाव के ऊपर विजय प्राप्त करता है ऐसा श्रीहरि के प्यारे श्रीवल्लभाचार्य ने कहा है।।9।।

इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(18) बालबोध

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसंग्रहम्।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम्।।1।।

अन्वयः– सदानन्दं हरिं नत्वा बालप्रबोधनार्थाय सुविनिश्चितं सर्वसिद्धान्तसंग्रहं वदामि।।1।।

अर्थः– सदानन्द (श्रीकृष्ण) को प्रणाम करके हित और अहित को न जानने वाले ऐसे जीवों के लिये सुविनिश्चित सब सिद्धान्त के संग्रह को मैं कहता हूँ।।1।।

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्।
जीवेश्वर विचारेण द्विधा ते हि निरूपिताः।।2।।

अन्वयः– मनीषिणां धर्मार्थकाममोक्षाख्याः चत्वारः अर्थाः (सन्ति) ते जीवेश्वर विचारेण द्विधा हि विचारिताः।।2।।

अर्थः– समझदार लोगों के लिये धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष चार प्रकार के पुरुषार्थ हैं अर्थात् मानव इन चार पदार्थों को चाहता है। वे पुरुषार्थ जीव (ऋषियों) से विचारित और ईश्वर (वेद) से विचारित होने से उनके दो प्रकार है क्योंकि एक तो पूर्ण ज्ञान वाले (वेद) से विचारित है और एक अल्प (ऋषि) ज्ञानवालों से विचारित अतः दोनों एक नहीं हो सकते इसलिये दो भेद कहे हैं।।2।।

अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः।
लौकिकाऋषिभिः प्रोक्ताः स्तथैवेश्वरशिक्षया।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः– साध्यसाधनसंयुताः तु वेदोक्ताः अलौकिकाः तथा एव ईश्वरशिक्षयात्रऋषिभिः प्रोक्ताः लौकिकाः।।3।।

अर्थः– साध्य (यज्ञ आदि) और साधन (स्रुक स्रुवादि, यज्ञ की सब सामग्री) से युक्त जो वेदोक्त है वे अलौकिक पुरुषार्थ हैं और ईश्वर की आज्ञा से ऋषियों ने जिन को कहा है वे लौकिक पुरुषार्थ हैं।।3।।

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः।

अन्वय – लौकिकान् तु प्रवक्ष्यामि यतः आद्याः वेदात् स्थिताः।

अर्थः– ऋषियों ने जिनका विचार किया है उन पुरुषार्थों को मैं कहूँगा। अलौकिक जो आद्य है वे तो वेद में स्थित हैं अर्थात् जिनकी वेद में स्थिति हैं वे तो निःसंदिग्ध ही हैं उनके विचार की तो कोई आवश्यकता नहीं है।

धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात्।।4।।

त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते।

अन्वयः – धर्मशास्त्राणि च नीतिशास्त्राणि च कामशास्त्राणि क्रमात् त्रिवर्गसाधकानि इति तन्निर्णयः न उच्यते।

अर्थ– मनुस्मृति आदि धर्म का निरूपण करने वाले शास्त्र धर्मशास्त्र हैं और कामन्दकीय आदि नीति का वर्णन करने वाले नीतिशास्त्र (अर्थशास्त्र) हैं और वात्स्यायन आदि काम का वर्णन करने वाले शास्त्र कामशास्त्र हैं। ये तीनों क्रम से धर्म'–अर्थ और काम इन त्रिवर्ग के साधक हैं इनका निर्णय तो हम नहीं करेंगे क्योंकि भक्तों के लिये उनका कोई प्रयोजन नहीं हैं।।4।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः।।5।।

द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ।

त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः।।6।।

अन्वयः— लौकिके मोक्षे स्वतः परतः द्वे द्वे द्विधा चत्वारि शास्त्राणि (सन्ति) तत्र त्यागात्यागविभागेन सांख्ययोगौ स्वतः प्रकीर्तितौ सांख्ये त्यागः प्रकीर्त्तितः।।6।।

अर्थ— लौकिक मोक्ष में स्वाश्रय और पराश्रय ये दो भेद है इन प्रत्येक में दो दो भेद हैं अतः चारशास्त्र हुए। उन चारों शास्त्रों में त्याग और अत्याग के भेद से सांख्य और योग इन दोनों में स्वाश्रय मोक्ष का कथन है। सांख्य में अनात्मवस्तु का त्याग कहा गया है।।6।।

अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहङ्कृतौ।

स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते।।7।।

अन्वयः— अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहङ्कृतौ यदा जीवः स्वरूपस्थः (भवति तदा) स कृतार्थः उच्यते।।7।।

अर्थः— जीव में जब अहन्ता ममता का नाश हो जाता है और जब अहंकार रहित हो जाता है अर्थात् देह को आत्मारूप मानना अहन्ता और जगत् की सब वस्तु भगवान् की है उन्हें अपनी मानना ममता है ये दोनों ही जब नष्ट हो जाते तब उसको अहंकार रहित कहा जाता है। सर्वथा का अर्थ है उदासीन होना अर्थात् मैं कुछ नहीं करता हूँ इस प्रकार जब जीव अपने स्वरूप (ब्रह्मांश रूप) में स्थित हो जाता है तब उसे कृतार्थ कहते हैं।।7।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तदर्थं प्रक्रिया काचित्पुराणेऽपि निरूपिता।

ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यतः।।8।।

अन्वयः– तदर्थं ऋषिभिः बहुधा प्रोक्ता काचित् प्रक्रिया पुराणे अपि निरूपिता अबाह्यतः एकं फलं (भवति)।।8।।

अर्थः– सांख्य में बताये गये मोक्ष के लिये ऋषियों ने अनेक प्रकार की प्रक्रियाएं एवं पुराण (भागवत आदि) में भी कोई प्रक्रिया कही है। उनमें वेदबाह्य अनीश्वर सांख्य को छोड़कर सब का फल एक ही है।।8।।

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि।

यमादयस्तु कर्त्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता।।9।।

अन्वयः– अत्यागे हि योगमार्गः हि त्यागः अपि मनसा (कर्त्तव्यः) यमादयः तु कर्त्तव्या योगे सिद्धे कृतार्थता भवति।।9।।

अर्थः– जिसमें किसी भी वस्तु का त्याग नहीं किया जाता है वह योगमार्ग है ऐसा निश्चित हैं और योग में भी त्याग है परन्तु वह त्याग मन से किया जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधि ये जो योग के आठ अंग हैं उनका करना तो आवश्यक है योग के सिद्ध हो जाने पर तो वह कृतार्थ (जीवन्मुंक्त) हो जाता है।।9।।

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते।

ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातः तद्रूपेण सुसेव्यते।।10।।

ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किञ्चिदुरीरितम्।

अन्वयः– पराश्रयेण मोक्षः तु द्विधा (अस्ति) सः अपि निरूप्यते

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातः तद्रूपेण सुसेव्यते। सर्वथा आद्येन न किञ्चित् शास्त्रं उदीरितम्।।10।।

अर्थः– परशब्द से यहां विष्णु और शिव का ग्रहण है क्योंकि ये सभी देवताओं में श्रेष्ठ है इन दोनों के आश्रय से होने वाला मोक्ष दो प्रकार का है उसका भी निरूपण है। वेद के ज्ञाता होने से एवं ब्रह्मज्ञ होने से ब्रह्माजी ब्राह्मणपन को प्राप्त हो गये इसलिये ब्राह्मण के रूप में उनकी पूजा होती है। उन चारों ही पुरुषार्थों को आद्य (ब्रह्माजी) नहीं देते क्योंकि सृष्टि करने वाले मोक्ष दे देते है तो उनकी सृष्टि का ही उच्छेद हो जाय। किन्तु ब्रह्माजी ने कुछ मोक्षशास्त्र अवश्य कहा है।।10।।

अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ।।11।।

वस्तुनः स्थिति संहारकार्यौ शास्त्रप्रवर्त्तकौ।।11।।

अन्वयः– अतः वस्तुनः स्थिति संहारकार्या शास्त्र प्रवर्त्तकौ शिवः च विष्णुः च जगतः हितकारकौ।

अर्थ – इसलिये वस्तु की स्थिति रखना और संहार करना तथा शास्त्र की प्रवृत्ति करना ये काम विष्णु और शिव के हैं अतः पुरुषार्थ का दान करके जगत् का हित करते हैं।।11।।

ब्रह्मैव तादृशं यस्मात्सर्वात्मकतयोदितौ।।12।।

निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता।।12।।

अन्वयः– यस्मात् तादृशं ब्रह्म एव (तस्मात्) सर्वात्मकतया उदितौ तत् तत् शास्त्रे तयोः निर्दोषपूर्णगुणता कृता (अस्ति)।

अर्थः– वस्तु की स्थिति करना और उसका संहार करना ये

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कार्य ब्रह्म के हैं और ब्रह्म ही शिव और विष्णुरूप हो गये हैं। इसलिये इन दोनों को जगत् के मूलकारण कहे हैं और इनको अपने अपने शास्त्र में निर्दोष एवं पूर्ण गुणवाले कहे गये हैं।।12।।

भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि।

भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः।।13।।

अन्वयः— यद्यपि भोगमोक्षफले दातुं द्वौ अपि शक्तौ भोगः तु शिवेन मोक्षः विष्णुना इति विनिश्चयः।

अर्थ – यद्यपि भोग और मोक्षरूप फलके देने में शिव और विष्णु दोनों ही समर्थ हैं। किन्तु भोग शिव से और मोक्ष विष्णु से ही मिलता है ऐसा निश्चय है। समर्थ होने से कभी कभी शिवजी भी मोक्ष दे सकते हैं और कभी विष्णु भी भोग देते है ऐसा कहीं कहीं वर्णन आता है।।13।।

लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्।

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि।।14।।

अन्वयः— लोके अपि यत् प्रभुः भुङ्क्ते तत् कर्हिचित् न यच्छति। हि तत् अपि अतिप्रियाय क्वचित् एव दीयते।

अर्थः— लोक में भी जिस वस्तु का भोग स्वयं स्वामी करता है वह वस्तु कभी किसी को नहीं देता। परन्तु जो अपना अत्यन्त प्रियभक्त होता है उसके लिये कभी कभी अपने भोगने की वस्तु को भी दे देता है।।14।।

नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः।

प्रत्येकं साधनं चैतद् द्वितीयार्थे महाक्षमः।।15।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः – नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः (ज्ञायते) एतत्प्रत्येकं साधनं द्वितीयार्थे महान् श्रमः (भवति)

अर्थः– यदि शिव और विष्णु ये दोनों देवता अपने भोगने के लिये नियत की गई वस्तु का यदि दान कर देते हैं तो उससे भक्त का तदीयत्व और तदाश्रय जाना जाता है। शिवका भजन तथा विष्णु का भजन एक एक ही फलका साधक है। दूसरे पुरुषार्थ के देने में उनको महान् श्रम होता है अर्थात् गुण का परिवर्त्तन करना पड़ता है।।15।।

जीवाः स्वाभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा।
श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति।।16।।

अन्वयः– जीवाः स्वभावतः दुष्टाः (सन्ति) दोषाभावाय सर्वदा श्रवणादि (कर्त्तव्यं) ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति।

अर्थः– जीवतो अपने आसुरादि स्वभाव के कारण दुष्ट हैं। अतः दोष निवृत्ति के लिये उन्हें श्रवण आदि नवधा भक्ति करनी चाहिये उस नवधाभक्ति से जब भगवान् में प्रेम हो जायेगा तो सब कार्य सिद्धि हो जायेंगे यह निश्चित है।।16।।

मोक्षस्तु विष्णोः सुलभो भोगश्च शिवतस्तथा।
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद्ध्रुवम्।।17।।

अन्वयः– मोक्षः तु विष्णोः सुलभः (अस्ति) तथा च भोगः शिवतः (भवति) आत्मनः समर्पणेन हि ध्रुवं तदीयत्वं भवेत्।

अर्थः– मोक्ष तो विष्णु से सुलभ है उसी प्रकार भोग शिव से सुलभ है अपनी आत्मा के साथ आत्मीय वस्तुओं का समर्पण करने से निश्चित रूप से तदीयता हो जाती हैं।।17।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः।

तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्समाचरेत्॥18॥

स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै भारद्वैगुण्यमन्यथा।

इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः॥19॥

अन्वयः– च अतदीयतया अपि केवलः चेत् समाश्रितः तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै स्वधर्म अनुतिष्ठन् किञ्चित् समाचरेत् अन्यथा वै भारद्वैगुण्यं (भवति) एव इति सर्व कथितं एतत् ज्ञाने भ्रमः न भवति।।18–19।।

अर्थः – और अधिकार के अभाव में यदि तदीयता सिद्ध न भी हो तो भगवान् का आश्रय एवं मैं भगवान् का हूँ इस बुद्धि से स्वधर्म (वर्णाश्रमधर्म) का कुछ आचरण करता रहे ऐसा यदि नहीं करता हैं तो उसके लिये दुगुना भार हो जाता है। अर्थात् एक तो वह अपने वर्णाश्रम धर्म का परित्याग करता है वह भार और दूसरा निष्फल श्रवणादिरूप भार दोनों ही भार उसके सिरपर हो जाते हैं। इस रीति से यह सब जो हमने कहा है उसका अच्छी प्रकार से ज्ञान होगा तो कभी पुरुषार्थ के विषय में भ्रम नहीं होगा।।18–19।।

इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितो बालप्रबोधः सम्पूर्णः।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(19) सिद्धान्तमुक्तावली

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा स्मृता।।1।।

अन्वयः— हरिं नत्वा स्वसिद्धान्तविनिश्चयं वक्ष्यामि सदा कृष्णसेवा कार्या सा मानसी परा मता।।1।

अर्थः— सब दुःखों को हरने वाले हरि को नमस्कार करके अपने सिद्धान्त के निश्चय को कहूँगा। सर्वदा (सब काल में) भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करनी चाहिये। यह सेवा मानसी होनी चाहिये वह सेवा श्रेष्ठ (फलरूप) कही गई हैं।।1।।

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्।।2।।

अन्वयः— तत्प्रवणं चेतः सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा (कार्या) ततः संसारदुखस्य निवृत्तिः (च) ब्रह्माबोधनं (भवति)।।2।।

अर्थः— श्रीहरि में चित्त की तन्मयता होना ही सेवा है। उस प्रकार की सेवा की सिद्धि के लिये शरीर से और मण्डन आदि के लिये द्रव्य से सेवा करनी चाहिये जिससे मानसिक सेवा सिद्ध होगी तब अहन्ता ममतारूप संसार की निवृत्ति हो जायेगी और अपने में तथा जगत् में अक्षर ब्रह्मरूपता का ज्ञान होगा।।2।।

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद्विलक्षणम्।।3।।
अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतंत्रं चेति नैकधा।।4।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः– हि परं ब्रह्म तु कृष्णः (च) सच्चिदानन्दकं बृहत् (अस्ति) तत् हि द्विरूपं एकं सर्वं स्यात् अपरं तस्मात् विलक्षणं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनः बहुधा जगुः। मायिकं सगुणं कार्यं च स्वतंत्रं इति एकधा न जगुः।।

अर्थः– परब्रह्मतो यशोदोत्संगलालित श्रीकृष्ण है और सत् चित् और आनन्द ये भगवान् के धर्म जिसमें है वह अक्षर ब्रह्म है। उस अक्षर ब्रह्म के दो रूप है। एक तो सर्वजगत् रूप अक्षर ब्रह्म और दूसरा उस जगत् रूप ब्रह्म से विलक्षण है। पहले जगत् रूप ब्रह्म के विषय में वादीलोग अनेक प्रकार कहते हैं। किन्हीं का तो यह कहना है कि यह जगत माया से दिखाई देता है। कोई इसे सगुण (सत्व–रज और तमसे बना हुआ) मानते हैं और कोई इसके लिये यह कहते हैं कि यह जगत् भगवान् का कार्य (बनाया हुआ) है। किन्हीं का कहना है कि यह जगत् तो स्वतंत्र है अनादिकाल से चला आ रहा है इसका बनाने वाला कोई नहीं है। सबका एकसा कहना नहीं है।।3–4।।

तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम्।
द्विरूपं चापि गंगावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी।।5।।
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा।
मर्यादामार्गविधिना तथाब्रह्मापि बुद्ध्यताम्।।6।।

अन्वयः– तत् एव एत्प्रकारेण भवति इति श्रुतेः मतं च द्विरूपं अपि गंगावत्ज्ञेयं (एका) सा जलरूपिणी (द्वितीया) माहात्म्यसंयुता मर्यादामार्गविधिना सेवतां नृणा भुक्तिमुक्तिप्रदा तथा ब्रह्म अपि बुध्यताम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः– यह अक्षर ब्रह्म ही जगत् के प्रकार (रूप) में हो जाता है। ऐसा श्रुति का मत है और दो रूपवाला अक्षर ब्रह्म भी गंगा की तरह समझना चाहिये। जैसे गंगा का एक तो जल रूप है और दूसरा माहात्म्य से युक्त तीर्थरूप है वह रूप मर्यादा मार्ग की रीति से सेवा करने वालों के भोग और मोक्ष को देने वाला है उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म के भी दो प्रकार समझने चाहिये एक तो जगत रूप और दूसरा भोग और मोक्ष को देने वाला।।5–6।।

तत्रैव देवतामूर्तिर्भक्तया या दृश्यते क्वचित्।

गंगायांच विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये।।7।।

अन्वयः– तत्र एव या देवतामूर्तिः भक्तया च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये क्वचित् गंगायां दृश्यते।

अर्थः– जलरूप और तीर्थरूप गंगा में ही जो देवतारूप गंगा की मूर्ति है वह भक्ति के कारण विशेष रूप से गंगा की मूर्ति प्रवाह से अलग नहीं है इस प्रकार अभेद बुद्धि के लिये कभी उस प्रवाह रूप गंगा में ही दिखाई देती है।।7।।

प्रत्यक्षा सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात्तया जले।

विहिताच्च फलात्तद्धि प्रतीत्यापि विशिष्यते।।8।।

अन्वयः – सा सर्वेषां प्रत्यक्षा न तयाजले प्राकाम्यं स्यात् हि तत् विहितात् फलात् च प्रतीत्या अपि विशिष्यते।

अर्थः– वह गंगा की देवता मूर्ति सबको प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती। तथापि अपनी भावना के अनुसार सभी रूप वाली उन गंगाजी में स्नान आचमन आदि उत्तम कार्य का करना सिद्ध होता है। कारण की वह जल शास्त्र में कहे हुए फल को

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

देने वाला है और प्रतीति से अर्थात् महात्माओं के विश्वास से भी अन्य जल की अपेक्षा गंगा जल को उत्तम समझना चाहिये।।8।।

यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत्।
यथा देवी तथा कृष्णस्तत्राप्येतदिहोच्यते।।9।।

अन्वयः– यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत् यथा देवी तथा कृष्णाः तत्र अपि एतद् इह उच्यते।

अर्थः– जैसे गंगा का जल कहीं अधिक कहीं कम दिखाई देता है उसी प्रकार यह जगत् भी कहीं तो प्रकटरूप से दिखाई देता है और कहीं तिरोहित हो जाता है। अर्थात् गंगाजल की तरह यह आविर्भाव तिरोभाव वाला है। जिस प्रकार सामर्थ्यवाली गंगा पवित्र करने में समर्थ है उसी प्रकार सर्वशक्तिमान् अक्षर ब्रह्म है। जिस प्रकार आधि दैविक देवी रूप गंगा है वैसे ही परब्रह्मरूप श्रीकृष्ण भी आधिदैविकस्वरूप है। परन्तु सम्पूर्णरूप से दृष्टान्त में यहां समता नहीं है क्योंकि गंगाजल में तो गंगा की अभेद बुद्धि से स्नानादि करने से फल मिलता है किन्तु जगत् के ब्रह्मरूप होने पर भी उपासना तो भगवान् की ही करनी चाहिये।।9।।

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः।
देवतारूपवत्प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः।।10।।

अन्वयः– जगत् तु त्रिविधं प्रोक्तं ततः ब्रह्मविष्णुशिवाः देवतारूपवत् प्रोक्ताः ब्रह्मणि हरिः इत्थं मतः।

अर्थः– जगत् सत्व रज और तम इन गुणों के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। अतः इस जगत् के अधिष्ठाता ब्रह्मा,

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विष्णु और शिव उपासना करने लायक देवता कहे गये हैं। अक्षर ब्रह्म में तो हरि (श्रीकृष्ण) ही सेव्य (भजनीय) माना गया है।।10।।

कामचारस्तु लोकेऽस्मिन्ब्रह्मादिभ्यो न चान्यथा।

परमानन्दरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः।।11।।

अन्वयः– अस्मिन् लोके कामचारः तु ब्रह्मा दिभ्यः (भवति) च अन्यथा न स्वात्मनि तु परमानन्दरूपे कृष्णे निश्चयः (अस्ति)।

अर्थः– इस त्रिगुणात्मक जगत् में उन उन के भक्तों के मनोरथों की पूर्ति तो उन उन ब्रह्मा, विष्णु और शिव से होती है और प्रकार से नहीं होती है। परन्तु अपनी आत्मा के लिये तो परमानन्दरूप श्रीकृष्ण में सकल मनोरथों की पूर्ति होती है ऐसा निश्चय है।।11।।

अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम्।

आत्मनि ब्रह्मरूपे हि छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः।।12।।

अन्वयः– अतः तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिः विधीयतां हि ब्रह्मरूपे आत्मनि व्योम्नि छिद्रा इव चेतनाः (सन्ति)।

अर्थः– इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूप है इस तरह ब्रह्मवाद से श्रीकृष्ण में अपनी बुद्धि (अन्तः करण) को लगाना चाहिये। यह आत्मा ब्रह्मरूप है अतः इस आत्मा में आकाश में छिद्र की तरह अनेक प्रकार की बुद्धि ज्ञात होती है। यद्यपि आकाश में कोई छेद नहीं है परन्तु यदि आंखों के सामने चलनी को रखकर देखा जाय तो आकाश में छेद दिखाई देते हैं वास्तविक नहीं है किन्तु उपाधि (चलनी) के कारण दिखाई देते हैं उसी प्रकार आत्मा

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

में भी अन्यथा बुद्धि औपाधिक है और अनेक प्रकार की है इसी के कारण जीव को बन्धन प्राप्त हो जाता है।।12।।

उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने।

गंगातीरस्थितो यद्वद्देवतां तत्र पश्यति।।13।।

तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञानी प्रपश्यति।।13।।

अन्वयः– यद्वत् गंगातीरस्थितः तत्र देवतां पश्यति तथा उपाधिनाशे (सति) ब्रह्मात्मत्वावबोधने विज्ञाने ज्ञानी स्वस्मिन् परं ब्रह्म कृष्णं पश्यति।

अर्थः– जैसे गंगाजी की तीर पर स्थित पुरुष जिसकी गंगा जी के प्रवाह में और मूर्ति में एक सी ही भावना है ऐसा गंगा का भक्त प्रवाह (जल) रूपगंगा में ही देवतारूप गंगाजी का दर्शन करता है उसी प्रकार अविद्या रूप उपाधि के नष्ट हो जाने पर उसे सभी वस्तु ब्रह्मरूप है ऐसा यथार्थ ज्ञान जब हो जायेगा तो ज्ञानी भी अपनी ही आत्मा में परब्रह्म श्रीकृष्ण के दर्शन को प्राप्त करता है। क्योंकि आत्मा सहित सब जगत् अक्षररूप है और अक्षर ब्रह्म ही भगवान् के विराजने का स्थान है अत एव अक्षर ब्रह्म के ज्ञान वाले को आत्मा में प्रभु के दर्शन हो जाते है।।13।।

संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा।।14।।

अपेक्षितजलादीनामभावात्तत्र दुःखभाक्।

अन्वयः– यथा दूरस्थः अपेक्षितजलादीनां अभावात् तत्र दुःखभाग् (भवति) तथा यः संसारी श्रीकृष्णं भजते स दुःखभाग् (भवति)।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः— जैसे गंगाजी से दूर में स्थित पुरुष चाहे हुए जल के एवं गंगा के दर्शन नहीं होने से दुःखी होता है। उसी प्रकार अहन्ता ममता रूप संसार में बंधा हुआ जीव भी श्रीकृष्ण का भजन करते हुवे भी वह भगवान् के दर्शन न होने से दुःखी ही होता है।।14।।

तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः।।15।।
आत्मानन्दसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत्।

अन्वयः— तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थः सर्वलोकतः विमुक्तः (सन्) आत्मानन्दसमुद्रस्थः कृष्णं एव विचिन्तयेत्।

अर्थः— इसलिये जो भगवन्मार्ग में स्थित है वह अहन्ता ममतारूप संसार से अलग रहता हुआ आत्मानन्दसमुद्र में स्थित (विहार करने वाले) श्रीकृष्ण का ही स्मरण करे। लौकिक इच्छाओं का परित्याग कर प्रभुसेवा करे।।15।।

लोकार्थी चेद्भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा।।16।।
क्लिष्टोऽपि चेद्भजेत् कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा।

अन्वयः— (यः) लोकार्थी (सन्) कृष्णं चेत् भजेत् सर्वथा क्लिष्टः भवति क्लिष्टः अपि चेत् कृष्णं भजेत् सर्वथा लोकः नश्यति।

अर्थः— जो पुरुष लौकिक कामना की इच्छा से यदि कृष्ण का भजन (सेवा) करता है तो वह सर्वथा दुःखी हो जाता है यदि क्लेश को सहन करके भी भगवद्भजन करता रहता है तो अहन्ता ममतारूप लोक (संसार) उसका नष्ट हो जाता है।।16।।

ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत् पूजोत्सवादिषु।।17।।
मर्यादास्थस्तु गंगायां श्रीभागवततत्परः।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।।18।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः— पुष्टिमार्गी ज्ञानाभावे श्री भागवततत्परः (सन्) पूजोत्सवादिषु तिष्ठेत् मर्यादास्थः तु ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) गंगायां तिष्ठेत् पुष्टिमार्गे अनुग्रहः नियामकः इति स्थितिः।

अर्थः— ज्ञान के अभाव में भी जो पुष्टि मार्गीय भक्त है वह भागवत में तत्पर होकर प्रभु की पूजा उत्सव आदि करता रहे और जो मर्यादामार्गीय है वह भक्त ज्ञान के अभाव में भागवत में तत्पर रहकर गंगाजी की तीर पर रहे। पुष्टि (अनुग्रह) मार्ग में भगवान् का अनुग्रह ही स्थान आदि का नियम करने वाला है ऐसी भगवन् मार्ग की मर्यादा है। अर्थात् भगवान् की इच्छा पुष्टिमार्गीय भक्तको जहां रखने की हो वहीं रहकर भागवत के श्रवणाध्यनादि में तत्पर रहे।।17–18।।

उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति।

ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मान्निरूपितः।।19।।

अन्वयः— उभयोः तु क्रमेण एव पूर्वोक्ता एव फलिष्यति भक्ति मार्गः ज्ञानाधिकः (अस्ति) तस्मात् एवं निरूपितः।।19।।

अर्थः— पुष्टिमार्गीय और मर्यादामार्गीय भक्तों के लिये क्रमं से ही कही गई मानसी सेवा ही प्राप्त हो जायेगी। परन्तु भक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग से अधिक है अतः ज्ञानी जब भक्ति (पुष्टि) मार्ग में आ जायेगा तब उसे प्राप्त होगी। ये ही इन दोनों मार्गों की विशेषता हैं इसका यहां निरूपण किया।।19।।

भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः।

अन्यथाभावनापन्नस्तस्मात्स्थानाच्च नश्यति।।20।।

अन्वयः— यथा तीरस्थः भक्त्यभावे तु दुष्टैः स्वकर्मभिः अन्यथाभावनापन्नः तस्मात् स्थानात् नश्यति।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः– जैसे गंगा के तीर पर रहता हुआ भी पुरुष भक्ति के अभाव में अपने दुष्ट कर्मों से अन्यथा भाव (पाखंडी पन) को प्राप्त होकर उस स्थान से भी नष्ट हो जाता है उसी प्रकार भक्त भी भक्ति के अभाव में अपने दुष्ट कर्मों से स्थान से भ्रष्ट होकर नीच योनि में जन्म लेता है।।20।।

एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम्।

एतद्बुध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात्।।21।।

अन्वयः– एवं मया गुप्तं स्वशास्त्रसर्वस्वं निरूपितं एतत् बुध्वा पुरुषः सर्वसंशयात् विमुच्येत।।21।।

अर्थः– इस प्रकार मैंने अपने शास्त्र का गुप्त सेवारूप सिद्धान्त कहा इसे जानकर पुरुष सब प्रकार के सन्देहों से मुक्त हो जाता है।।21।।

इति श्रीवल्लभाचार्य विरचिता सिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्ण।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

20 पुष्टिप्रवाहमर्यादा

पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक्।

जीव-देह-क्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च।।1।।

वक्ष्यामि सर्वसन्देहा न भविष्यन्ति यच्छुतेः।

अन्वयः– पृथक्–पृथक् विशेषेण जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण च फलेन पुष्टिप्रवाहमर्यादाः वक्ष्यामि यत् श्रुतेः सर्वसन्देहाः न भविष्यन्ति।।1।।

अर्थः– अलग–अलग विशेष से जीव, देह और क्रियाओं के भेद से प्रवाह से और फल से पुष्टि, प्रवाह और मर्यादा को मैं कहूँगा। उसके सुनने से सब प्रकार के सन्देह दूर हो जायेंगे।।1।।

भक्तिमार्गस्यकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः।।2।।

अन्वयः– भक्तिमार्गस्यकथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः।

अर्थः– भगवान् ने कृपा करके भक्तिमार्ग को अन्य मार्गों से अलग से ही कहा है इससे भगवान् के अनुग्रह का निश्चय होता है। इसी से यह भी ज्ञात होता है कि भगवान् का अनुग्रहमार्ग पुष्टिमार्ग भी अलग हीं है।।2।।

"द्वौ भूतसर्गा" वित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः।

वेदस्य विद्यमानत्वान्मर्यादापि व्यवस्थिता।।3।।

अन्वयः– द्वौ भूसर्गौ इति उक्तेः प्रवाहः अपि व्यवस्थितः वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादा अपि व्यवस्थिता।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः— भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है कि "इस लोक में दैव और आसुर भेद से दो प्रकार की प्राणियों की सृष्टि है" इस से प्रवाह मार्ग भी सिद्ध होता है और कर्म आदि की व्यवस्था करने वाला वेद जब विद्यमान है तो मर्यादामार्ग भी अनादि है ऐसा सिद्ध होता है।।2।।

कश्चिदेव हि भक्तो हि "यो मद्भक्त" इतीरणात्।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः।।4।।
न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नोवेदाच्च भेदतः।
"यदा यस्ये" ति वचना "न्नाहंवेदै" रितीरणात्।।5।।

अन्वयः— 'यो मद्भक्तः" इति ईरणात् सर्वत्र उत्कर्षकथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः हि कश्चित् एव भक्तः सर्वः नः अतः प्रवाहात् हि (पुष्टिमार्गः) भिन्नः च "यदा यस्ये" ति वचनात् "नाहं [illegible]:" इति ईरणात् वेदातः भेदतः (स्थितः)।।4–5।।

अर्थः— वेद में भगवान् ने कहा है 'जो मेरा भक्त है वह मुझे प्रिय है" इससे सब शास्त्रों में भक्ति का उत्कर्ष कहा है इससे सिद्ध होता है कि पुष्टिमार्ग भी है। कोई–कोई ही मेरा भक्त होता है। इस कथन से कोई–कोई ही भक्त होता है सब नहीं होते। इस कारण से भी पुष्टिमार्ग की प्रवाहमार्ग से भिन्नता निश्चित होती है। "जब भगवान् अनुग्रह करते हैं तब भक्त की बुद्धि वेदमार्ग और लोक मार्ग में नहीं लगती है" इस भागवत के वचन से तथा "मेरा इस प्रकार का दर्शन वेद आदि से नहीं होता" इस भगवान् के वचन से मर्यादामार्ग से भी पुष्टिमार्ग भिन्न है ऐसा सिद्ध होता है।।4–5।।

मार्गैकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ।
न तद्युक्तं सूत्रतोहि भिन्नौ युक्त्या हि वैदिकः।।6।।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः– मार्गैकत्वे अन्त्यौ अपि तनू भक्त्यागमौ मतौ इति चेन् तत् युक्तं न हि सूत्रतः युक्त्या वैदिकः हि भिन्नः (अस्ति)।

अर्थः– तीनों मार्गो को एक ही मार्ग मान लें प्रवाह और मर्यादा मार्ग दोनों ही भक्ति मार्ग के अंग हो जायेगें और ये दोनों भक्ति के साधन है ऐसा यदि कहते हो तो भी ठीक नहीं। मुख्य के फल को ही जिसमें फल माना जाता है उसे अंग कहते हैं यहां तो मर्यादा मार्ग का फल तो "तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्" इस सूत्र से अक्षर के साथ एकता हो जाना फल कहा है और भक्ति का फल "तत्संस्थस्यानन्दोपदेशात्" इस शाण्डिल्य सूत्र से आनन्द प्राप्ति बताई है। अतः फल की भिन्नता के कारण दोनों ही मार्ग भिन्न हैं और प्रवाहमार्ग का फलतो संसार प्राप्ति है। इसलिये यह भी भक्तिमार्ग का अंग नहीं हो सकता।।6।।

जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः।

यथा तद्वत्पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः।।7।।

प्रमाणभेदाद्भिन्नोहि पुष्टिमार्गो निरूपितः।

अन्वयः– यथा पुष्टिमार्गे श्रुतेः जीवदेहकृतीनां भिन्नत्वंतद्वत् नित्यता च हि द्वयोः अपि निषेधतः प्रमाणभेदात् पुष्टिमार्गः भिन्नः निरूपितः।।7।।

अर्थः– जैसे पुष्टिमार्ग में श्रुति के प्रमाण से जीव देह और क्रिया की भिन्नता है उसी प्रकार नित्यता भी है "ध्रुवा सोऽस्य कीरयः" यह श्रुति प्रमाण है। इसी कारण से "स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्" इत्यादि प्रमाणों से प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्ग में भगवत्प्राप्तिरूप फलका निषेध किया है और इन

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दोनों मार्गों के प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों के प्रमाण भेद से भी पुष्टिमार्ग का निरूपण भिन्न ही है।।7।।

सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतम्।।8।।

इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः।

वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः।।9।।

अन्वयः– स्वरूपांगक्रियायुतं सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि हरिः इच्छा मात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् वचसा हि वेदमार्गं सृष्टवान् कायेन पुष्टिं सृष्टवान् इति निश्चयः।

अर्थः– जीव, देह और क्रिया से युक्त इन तीनों मार्गों की सृष्टि कैसे होती है उस सृष्टि भेद को कहूँगा। उसमें पहले प्रवाह सृष्टि को कहते है भगवान् ने अपनी इच्छा मात्र से ही कुछ जीवों को मैं आसुर करूंगा इस प्रकार की इच्छा से मन से प्रवाहमार्ग की सृष्टि की एवं वेद रूप वाणी से मर्यादा मार्ग की सृष्टि की यह मर्यादा मार्ग वेद मूलक है। इस प्रकार शरीर के एक एक अवयव से सृष्टि कहकर अब पुष्टि सृष्टि को कहते है आनन्दमात्र हस्त चरण मुख उदर आदि रूप सम्पूर्ण शरीर से पुष्टिमार्ग की सृष्टि की यह सृष्टि सबसे उत्कृष्ट है यह बात निश्चित है।।8–9।।

मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च।

कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकता।।10।।

अन्वयः– लोके मूलेच्छातः फलं (भवति) च वैदिके अपि वेदोक्तं (फलं भवति) पुष्टौ तु कायेन फलं भिन्नेच्छातः अपि एकता न।

अर्थः– प्रवाह मार्ग में सृष्टि निरन्तर चलती रहे इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

की इच्छा से उनको लौकिक फल मिलता है और वैदिक मर्यादा मार्ग में अक्षर ब्रह्म में मिल जाना यह वेदोक्त फल होता है और पुष्टिमार्ग में तो शरीर (निजस्वरूप) से निजानन्द की प्राप्ति रूप फल होता है। इस तरह भिन्न–भिन्न इच्छाओं के कारण भिन्न–भिन्न फलों की प्राप्ति होती है।।10।।

"तानहं द्विषतो" वाक्याद्भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः।

अत एवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशतः।।11।।

अन्वयः– तानहं द्विषतः वाक्यात् प्रवाहिणः जीवाः भिन्नाः (सन्ति) अत एव इतरौ भिन्नौ मोक्षप्रवेशतः सान्तौ (स्तः)।

अर्थः– "मैं जगत् रूप ब्रह्म से द्वेष करने वाले आसुर जीवों को बारंबार आसुर योनि में ही डालता हूँ–" इस वाक्य से प्रवाही जीव भिन्न हैं। अत एव मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय जीव भी भिन्न ही है। प्रवाही जीव सान्त नहीं है सदा संसार चक्र में ही भ्रमण करते है। किन्तु मर्यादामार्गीय जीवों का अक्षर में प्रवेश होने से और पुष्टिमार्गीय जीवों को भगवत्प्राप्ति होने से सान्त हैं।।11।।

तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।

भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्।।12।।

अन्वयः– तस्मात् पुष्टिमार्गे जीवाः भिन्नाः एव संशयः न तत्सृष्टिः भगवद्रूपसेवार्थं (अस्ति) अन्यथा न भवेत्।।12।।

अर्थः– इसलिये प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्ग के जीवों से पुष्टिमार्ग के जीव भिन्न ही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं। उनकी सृष्टि भगवान् के स्वरूप की सेवा के लिये है अन्यथा उनकी सृष्टि होना सम्भव नहीं।।12।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च।

तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा।।13।।

तथापि यावता कार्यं तावत्तस्य करोति हि।

अन्वयः– स्वरूपेण अवतारेण लिंगेन च गुणेन च स्वरूपे वा देहे वा तत्क्रियासु तारतम्यं न (अस्ति) तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि।

अर्थः– यद्यपि पुष्टिमार्गीय जीवों में और भगवान् में स्वरूप (सच्चिदानन्दात्मक) से अवतार से, लिंग (ध्वज–वज्र आदि चिह्नों) से और गुण (ऐश्वर्य आदि) से स्वरूप में देह में अथवा उनकी क्रिया में कोई भेद नहीं है तथापि जितने भेद से भगवान् का रमणरूप कार्य सिद्ध होता है उतना भेद भगवान् उन पुष्टिमार्गीय जीवों में रखते हैं यह निश्चित है।।13।।

ते हि द्विधा शुद्धमिश्रभेदान्मिश्रास्त्रिधा पुन.।।14।।

प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये।

पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः।।15।।

मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाऽतिदुर्लभाः।

अन्वयः– ते हि शुद्धमिश्रभेदात् द्विधा पुनः भगवत्कार्यसिद्धये प्रवाहादिभेदेन त्रिधा (भवन्ति) पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण विमिश्राः क्रियारताः मर्यादया विमिश्राः गुणज्ञाः प्रेम्णा शुद्धाः ते अतिदुर्लभा।।15।।

अर्थः– वे पुष्टिमार्गीय जीव शुद्ध और मिश्र भेद से दो प्रकार के हैं। उन दो प्रकार के जीवों में भी भगवान् के रमणरूप कार्य

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

की सिद्धि के लिये मिश्रित जीव प्रवाह मिश्र मर्यादामिश्र और पुष्टिमिश्र इस तरह तीन भेदवाले हो जाते हैं। जो पुष्टिजीव पुष्टि से मिश्रित होते हैं वे सर्वज्ञ होते हैं और जो पुष्टिजीव प्रवाह से मिश्रित होते हैं वे कर्म करने में अनुराग वाले होते हैं और जो मर्यादा से मिश्रित होते हैं वे गुणज्ञ होते हैं अर्थात् भगवान् के गुण आदि को जानने वाले होते हैं और जो पुष्टिजीव प्रेम से शुद्ध होते है वे तो अत्यन्त ही दुर्लभ हैं।।14–15।।

एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र निरूप्यते।।16।।

भगवानेव हि फलं स यथाऽऽविर्भवेद्भुवि।

गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्।।17।।

अन्वयः– एवं तेषां सर्गः तु (निरूपितम्) अत्र फलं तु निरूप्यते हि भगवान् एव फलं व भुवि गुणस्वरूपभेदेन यथा आविर्भवेत् तथा तेषां फलं भवेत्।

अर्थः– इस प्रकार उन पुष्टिजीवों को सृष्टि का निरूपण तो कर दिया। अब यहाँ उनके फलका निरूपण करते हैं। उनके लिये फल भगवान् ही है ऐसा निश्चित है। वे भगवान् श्रीकृष्ण हृदय में पृथिवी पर (वृन्दावन आदि में) ऐश्वर्य आदि गुणों के भेद से अथवा नृसिंह, वामन आदि स्वरूप भेद से जिस प्रकार से प्रकट होते हैं उसी प्रकार उनका फल होता है।।16–17।।

आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित्।

अहंकारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि।।18।।

अन्वयः– आसक्तौ अथवा अहंकारे लोके तन्मार्गस्थापनाय क्वचित् भगवान् एव शापं दापयति।।18।।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः— नलकूवर आदि की तरह जिनकी लौकिक में आसक्ति हो जाय अथवा चित्रकेतु आदि की तरह अहंकार हो जाय तो लोक में भक्तों को पुष्टिमार्ग में रखने के लिये किसी समय भगवान् ही किसी से शाप दिला देते हैं।।18।।

न ते पाषण्डतांयान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः।

महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे।।19।।

अन्वयः— ते पाषण्डतां न यान्ति च रोगाद्युपद्रवाः न (भवन्ति) प्रायेण महानुभावाः (भवन्ति) शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे (भवति)।

अर्थः— भगवान् जिनको शाप दिलाते हैं वे पाखण्डी नहीं होते अर्थात् वे कभी पाखण्डमार्ग को स्वीकार नही करते एवं उनके रोग आदि उपद्रव भी नहीं होते हैं और प्रायः महानुभाव होते हैं उनके लिये शास्त्र (अनुशासन रूप शाप) शुद्धि करने वाला होता है।।19।।

भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि।

अन्वयः— भगवत्तारतम्येन (ते) हि तारतम्यं भजन्ति।

अर्थः— भगवत्स्वरूप में और भगवद्भजन प्रकार के तारतम्य से भक्तों के फल में भी तारतम्य (न्यूनाधिकता) हो जाती है। उस भजन के तारतम्य का प्रकार जैसे पुष्टिमार्गीय भक्त के भजन में स्नेह नियामक होता है। मर्यादामार्गीय भक्त के भजन में विधि नियामक होती है यद्यपि भजन तो दोनों मार्गों में पुरुषोत्तम का ही होता है। किन्तु नियामक के भेद से दोनों में भेद हो जाता है जैसे वृत्रासुर का भाव संकर्षण में हुआ और गजेन्द्र (इन्द्रद्युम्न) का भाव निर्गुण परब्रह्म में हुआ।।20।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापट्यात्तेषु नान्यथा।।20।।
वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः।

अन्वयः– तेषु वैदिकत्वं (च) लौकिकत्वं कापट्यात् (अस्ति) वैष्णवत्वं हि सहजं अन्यत्र ततः विपर्ययः (अस्ति)।।20।।

अर्थः– उन भक्तों में वैदिक कर्मों का अनुष्ठान एवं लौकिक व्यवहार ये दोनों कापट्य से (लोक संग्रह के लिये) होते हैं। उनमें स्वाभाविक तो भक्तिपन ही होता है और मर्यादा जीवों में और लौकिक जीवों में इसके विपरीत होता है अर्थात् मर्यादा जीवों में वैष्णवपन कपट से और वैदिकपन स्वभाव से लौकिक में भी लौकिकपन स्वभाव से और वैष्णपन कपट से होता है।।20।।

सम्बन्धिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे।।21।।
चर्षणीशब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु।
क्षणात्सर्वत्वमायान्ति रूचिस्तेषां न कुत्रचित्।।22।।
तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र शकलं फलम्।

अन्वयः– ये सम्बन्धिनः जीवाः तथा (ये) प्रवाहस्थाः अपरे ते तु सर्वे चर्षणीशब्दवाच्याः ते सर्वे सर्ववर्त्मसु क्षणात् सर्वत्वं आयान्ति तेषां रूचिः कुत्रचित् न (भवति) सर्वत्र तेषां क्रियानुसारेण शकलं फलं (भवति)।।21–22।।

अर्थः– जो पुष्टि प्रवाह और मर्यादा इन तीनों मार्गों से सम्बन्ध रखने वाले जीव है वे और जो केवल प्रवाहमार्ग में आसक्ति वाले जीव हैं उन सबको चर्षणी (भ्रान्त) शब्द से कहते हैं ऐसे लोग क्षणमात्र में ही सबमार्ग के हो जाते हैं। उनकी रुचि किसी भी मार्ग में दृढ नहीं होती। सभी मार्गों में उनको उनके कर्मों के अनुसार खण्ड खण्ड रूप में फल मिलता है।।21–22।।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

प्रवाहस्थान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपांगक्रियायुतान्।।23।।

जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे "प्रवृत्तिं चेति" वर्णिताः।

ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः।।24।।

अन्वयः– स्वरूपांगक्रियायुतान् प्रवाहस्थान् प्रवक्ष्यामि "प्रवृत्ति च" इति वर्णिताः ते सर्वे जीवाः हि आसुराः (सन्ति) च अज्ञदुर्ज्ञविभेदत द्विधा हि प्रकीर्त्यन्ते।।23–24।।

अर्थः– स्वरूप, देह और क्रिया से युक्त प्रवाहमार्गीय जीव को मैं कहूँगा। प्रवृत्ति और निवृत्ति को जो नहीं जानते हैं वे जी आसुर हैं "प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः" ऐसा गीता भगवान् ने वर्णन किया है। वे आसुर (प्रवाही) जीव अज्ञ और दु इन भेदों से दो प्रकार के कहे गये हैं।।23–24।।

दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञास्तानन‌ु ये पुनः।

प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते।।25।।

सोऽपितैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः।।25।।

अन्वयः– ये भगवत्प्रोक्ताः ते हि दुर्ज्ञाः ये पुनः तान् अनु अज्ञाः पुष्टिस्थः प्रवाहे समागत्य अपि तैः सह न युज्यते सः अ तैः न युज्यते अतः कर्मणा तत्कुले जातः (अस्ति)।। 25।।

अर्थः– भगवान् ने गीता में जिनका वर्णन किया है वे जी दुर्ज्ञ (आसुर) हैं और जो उनका अनुकरण करते हैं वे अज्ञ क जाते हैं। यद्यपि अज्ञआसुर आसुर नहीं है तथापि असुरकुल उत्पन्न होने से अथवा असुरों का अनुकरण करने से वे आ कहे जाते हैं इनजीवों की मुक्ति सत्संग आदि से भक्ति के द्वारा जाती है। अथवा सम्भ्रम, भय द्वेष आदि जो प्रसाधन हैं उनके द्वा

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भी भगवान् की कृपा से मुक्ति हो जाती है यह बात "मन्येऽसुरान् भागवतान्" इत्यादि वाक्यों से ज्ञात होती है। पुष्टि जीव यदि प्रवाह मार्ग में आ जाते हैं परन्तु वे उन प्रवाही जीवों के साथ मिलते नहीं हैं। इसी प्रकार मर्यादामार्गीय भी आसुर कुल में आ जाते हैं वे भी उन आसुरों के धर्म से नहीं मिलते हैं। केवल कर्म के कारण उनका जन्म आसुरकुल में हो जाता है।।25।

इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः सम्पूर्णः।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

21 सिद्धान्तरहस्य

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।

साक्षात् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते।।1।।

अन्वयः— श्रावणस्य अमले पक्षे एकादश्यां महानिशि भगवता साक्षात् प्रोक्तं तत् अक्षरशः उच्यते।।1।।

अर्थः— श्रावण महीने के शुक्लपक्ष की एकादशी को आधी रात में भगवान् ने साक्षात् (प्रत्यक्ष होकर) जो कहा उसे मैं अक्षरशः कहता हूँ।।1।।

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।

सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः।।2।।

अन्वयः— ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिः हि भवति दोषाः पंचविधाः स्मृताः।।2।।

अर्थः— आत्मा के सहित सब पदार्थों को भगवान् के समर्पित कर देना ब्रह्म सम्बन्ध है उससे सब जीव और देह के दोषों की निवृत्ति हो जाती है सेवा में रुकावट डालने वाले वे दोष पांच प्रकार के श्रुति स्मृतियों में कहे गये हैं।।2।।

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।

संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथञ्चन।।3।।

अन्वयः— लोकवेदनिरूपिताः सहजा देशकालोत्थाः संयोगजाः च स्पर्शजाः कथंचन न मन्तव्याः।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः– लोक और वेद में जिनका निरूपण है ऐसे अहन्ता ममतारूप सहजदोष, देशोत्थदोष, कालोत्थदोष, संयोगजदोष तथा स्पर्शजन्य दोष ये किसी प्रकार से नहीं होते हैं अर्थात् अंगबंग आदि में उत्पन्न होने का देश जन्य दोष कलियुग तथा दुष्ट मुहूर्त में उत्पन्न होना कालजन्य दोष, मनके संयोग से उत्पन्न होने वाला संयोगज एवं मन, वाणी तथा देह से उत्पन्न होने वाला स्पर्शजन्य दोष सेवा में बाधक नहीं होता।।3।।

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत्।।4।।

अन्वयः– अन्यथा सर्वदोषाणां निवृत्तिः कथञ्चन न (भवति) तस्मात् असमर्पितवस्तूनां वर्जनं आचरेत्।।4।।

अर्थः– भगवान् को निवेदन किये बिना पूर्व में कहे गये दोषों की निवृत्ति किसी प्रकार नहीं होती है। इसलिये असमर्पित वस्तुओं का वर्जन करना अपने उपयोग में नहीं लेना चाहिये।।4।।

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तंसमर्पणम्।।5।।
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्।

अन्वयः– समर्प्य एव निवेदिभिः सर्वं कुर्यात् इति स्थितिः देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणं न मतं तस्मात् सर्वकार्ये आदि सर्ववस्तुसमर्पण (कर्त्तव्यम्)।।5।।

अर्थः– भगवान् के भक्त को सब वस्तु का समर्पण भगवान् को करना चाहिये और उन्हीं निवेदित वस्तुओं से ही सब काम

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

करना चाहिये। ऐसा पुष्टिमार्ग का नियम है। भगवान् देवताओं के भी देवता है। उनके लिये अर्धभुक्त (पहले अपने उपयोग में लाई गई वस्तु का) समर्पण संमत नहीं माना गया है। इसलिये सब काम में आदि में सम्पूर्ण वस्तु का ही समर्पण करना चाहिये।।5।।

दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः।।6।।

न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।

अन्वयः– तथा च हरेः सकलं न ग्राह्यं इतिं दत्तापहारवचनं (तत्) वाक्यं भिन्नमार्गपरं मतम्।।6।।

अर्थः– इसी प्रकार भगवान् की निवेदित वस्तु का ग्रहण नहीं करना चाहिये इत्यादि जो वचन भागवत् के एकादशस्कन्ध में "अपि दीपावलोकं में नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम्" वाक्य है वह तो भक्ति (पुष्टि) मार्ग के लिये नहीं है।।6।।

सेवकानां यथालोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति।।7।।

तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।

गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादि वर्णना।।8।।

गंगात्वेन निरूप्या स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि।।8।।

अन्वयः– यथा लोके सेवकानां व्यवहारः प्रसिद्ध्यति तथा समर्प्य एवं सर्वं कार्यं ततः सर्वेषां ब्रह्मता स्यात् सर्वदोषाणां गंगा त्वं च गुणदोषादिवर्णना गंगात्वेन एव निरूप्या स्यात् हि तद्वत् अत्र अपि।।8।।

अर्थः– जैसे लोक में सब काम स्वामी को निवेदन करके ही करते है इस प्रकार का सेवकों का व्यवहार प्रसिद्ध है उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

भगवान के भक्त को भी लौकिक एवं वैदिक सब काम श्री हरि को निवेदन करके ही करना चाहिये निर्दोष हरि को समर्पित की गई वस्तु भी ब्रह्म (शुद्ध निर्दोष) रूप हो जाती है। जैसे अन्यत्र बहने वाले जल की मलिनता अपवित्रता आदि दोष भी गंगा में मिलने पर उस जल का वर्णन गंगा रूप से ही किया जाता है। इसी प्रकार आत्म निवेदन रूप शरणागति के अनन्तर जीव के गुणदोष आदि ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होने से ब्रह्मरूप हो जाते है।।8।।

इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितं सिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चिन्ताकापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति।

भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्।।1।।

अन्वयः— निवेदितात्मभिः कदा अपि का अपि चिन्ता न कार्या च भगवान् अपिपुष्टिस्थः इति लौकिकीं गतिं न करिष्यति।

अर्थः— जिसने अपनी आत्मा के सहित सम्पूर्ण आत्मीय वस्तुओं का समर्पण प्रभु को कर दिया है उसे कभी भी कोई भी चिंन्ता नहीं करनी चाहिये। क्योंकि भगवान् तो अनुग्रह में स्थिर हैं इसलिये अन्य लौकिकी गति नहीं करेंगे। अर्थात् प्रवाही जीवों की तरह लौकिक गति नहीं करेंगे।।1।।

निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।

सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति।।2।।

अन्वयः— तादृशैः जनैः निवेदनं तु सर्वथा स्मर्तव्यं सर्वेश्वरः च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति।।2।।

अर्थः — जो भगवत्सेवातत्पर भक्तजन हैं उनके साथ में मिल कर निवेदन का स्मरण करना सब प्रकार से आवश्यक है। जो सबकी आत्मा भगवान् है अपनी इच्छा से ही सब कुछ करेंगें अथवा निज का अर्थ है भक्त उस भक्त की इच्छा के अनुसार करेंगे।।2।।

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः।

अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः– सर्वेषां प्रभुसम्बन्धः प्रत्येकं न इति स्थितिः अतः अन्यविनियोगे अपि का चिन्ता चेत् स्वस्य स अपि (का चिन्ता)।।3।।

अर्थः– आत्मा सहित आत्मीय सब वस्तुओं का श्रीहरि के साथ सम्बन्ध समान ही है अलग अलग नहीं है ऐसी जब स्थिति है तो आत्मीय वस्तुओं का अपने में और अपना आत्मीय वस्तुओं में विनियोग हो तो भी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करना।।3।।

अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम्।

यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना।।4।।

अन्वयः– कृष्णसात्कृतप्राणैः यैः अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् आत्मनिवेदनं कृतं तेषां का परिदेवना।।4।।

अर्थः– जिनने अपने प्राणों को भगवान् के अधीन कर दिया है ऐसे भक्त उन्होंने समझकर या बिना समझ के भी आत्म निवेदन किया है तो भी उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये।।4।।

तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे।

विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः।।5।।

अन्वयः– निवेदने श्रीपुरुषोत्तमे चिन्ता त्याज्या तथा विनियोगे अपि सा त्याज्या हि हरिः स्वतः समर्थः।।5।।

अर्थः– मेरे निवेदन को श्रीपुरुषोत्तम ने स्वीकार किया है या नहीं पुरुषोत्तम के विषय में इस प्रकार की चिन्ता का परित्याग कर देना चाहिये। इसी प्रकार लौकिक कार्य आदि में किसी अन्य का विनियोग (आश्रय) हो जाय तो भी चिन्ता न करना अर्थात् कभी लौकिक भय

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आदि उपस्थित हो जाय उसके निवारण के लिये जीव स्वभाव के कारण किसी अन्य का आश्रय भी ले लिया जाय तो कोई चिन्ता न करना प्रमाद से वैसा बन जाने पर भी प्रभु उसका परित्याग नहीं करेंगे क्योंकि भगवान् का स्वभाव ही ऐसा है कि वे इस प्रकार के जीव का उद्धार करने में उसके साधन की अपेक्षा नहीं रखते।।5।।

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति।

पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिलाः।।6।।

अन्वयः– यस्मात् पुष्टिमार्गस्थितः (तस्मात्) हरिः लोके तथा वेदे स्वास्थ्यं तु न करिष्यति (तस्मात्) अखिलाः साक्षिणः भवत।।6।।

अर्थः– जीव अथवा हरि पुष्टिमार्ग में स्थित है अतः हरि लोक में तथा वेद में आसक्ति नहीं करावेंगे इसलिये भगवान् जो करते हैं उसे साक्षी की तरह देखते रहना।।6।।

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञाऽबाधनं वा हरीच्छया।

अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्।।7।।

अन्वयः– गुरोः आज्ञाऽबाधनं यथा स्यात्तथा सेवाकृतिः वा हरीच्छया सेवाकृतिः अतः सेवापरं चित्तं विधाय सुखं स्थीयताम्।।7।।

अर्थः– गुरु की आज्ञा का उल्लंघन जिस प्रकार न हो उस प्रकार से सेवा करनी चाहिये अथवा सामग्री के विषय में प्रभु की इच्छानुसार सेवा करना परन्तु चित्त को सेवा पर रखके ही सुख से रहना।।7।।

चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति।

तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्।।8।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः— चित्तोद्वेगं विधाय अपि हरिः यत् यत् करिष्यति (तत् तत्) तस्य तथा एव लीला इति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्।

अर्थः— चित्त में उद्वेग करके भी श्रीहरि जो जो करेंगे वह वह उसकी वैसी ही लीला है ऐसा मान कर चिन्ता को शीघ्र छोड़ देना चाहिये।।8।।

तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः।।9।।

अन्वयः— तस्मात् सर्वात्मना नित्यं मम श्रीकृष्णः शरणं इति सततं वदद्भिः एव स्थेयं इति एव मे मतिः।।9।।

अर्थः— इसलिये सब प्रकार से सर्वदा (हर समय) मेरे श्रीकृष्ण ही रक्षक है ऐसे निरन्तर बोलते ही रहना चाहिये ऐसी मेरी मति है।।9।।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं नवरत्नं समाप्तम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

23 अन्तःकरणप्रबोध

अन्तःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु।
कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्।।1।।

अन्वयः– हे अन्तःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु कृष्णात्परं वस्तुतः दोषवर्जितं दैवं न अस्ति।।1।।

अर्थः– हे अन्त करण! मेरे वचन को तू सावधान होकर सुन ले कृष्ण से अन्य कोई वास्तव में दोषरहित परम इष्ट रूप देवता नहीं है।।1।।

चाण्डाली चेद्रा[illegible]जी जाता राज्ञा च मानिता।
कदाचिदपमानेऽपि मूलतः का क्षतिर्भवेत्।।2।।

अन्वयः– चाण्डाली चेत् राजपत्नी जाता च राज्ञा मानिता कदाचित् अपमाने अपि मूलतः का क्षतिः भवेत्।।2।।

अर्थः– चाण्डाली यदि राजा की पत्नी हो गई और राजा ने अन्यरानियों से बढ़कर उसे सम्मानित भी किया हो परन्तु किसी समय उस रानी का अपराध हो जाय उसके कारण राजा से अपमानित होने पर भी मूल जो राजपत्नीपन है उसमें कोई क्षति नहीं होती। इसी प्रकार यदि प्रभु फल देने में विलंब भी करें तो भी अंगीकार में किसी प्रकार की हानि नहीं होती अतः चिन्ता नहीं करनी चाहिये।।2।।

समर्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः।
का ममाऽधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत्।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः– अहं समर्पणात् पूर्वं किं सदा उत्तमः स्थितः मम अधमता का भाव्या यतः पश्चात्तापः भवेत्।।3।।

अर्थः– मैं समर्पण के पहले क्या सदा उत्तम ही था? मेरी अधमता क्या होने वाली है? जिससे फल विलम्ब के कारण मुझे पश्चात्ताप होगा।।3।।

सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत्।।4।।

अन्वयः– विष्णुः सत्यसंकल्पतः अन्यथा तु न करिष्यति सततं आज्ञा एव कार्या अन्यथा स्वामिद्रोहः भवेत्।।4।।

अर्थः– सर्वत्रव्यापक श्रीविष्णु सत्यसंकल्प के कारण फल देने में अन्यथा नहीं करेंगे इसलिये निरन्तर उनकी आज्ञा का ही पालन करना चाहिये अन्यथा स्वामी का द्रोह होगा।।4।।

सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति।
आज्ञा पूर्वं तु या जाता गंगासागरसंगमे।।5।।
याऽपि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्द्वयं मया।
देहदेश परित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः।।6।।

अन्वयः– सेवकस्य अयं धर्मः स्वामी स्वस्य करिष्यति पूर्वं तु गंगासागरसंगमे या आज्ञा जाता पश्चात् मधुवने अपि या जाता मया देहदेशपरित्यागः तदद्वयं न कृतं तृतीयः लोकगोचरः।।5–6।।

अर्थः– सेवक का तो अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना धर्म है स्वामी (भगवान्) अपने सेवक कार्य स्वयं करेंगे। पहले तो गंगासागर संगम पर जो देहपरित्याग की आज्ञा हुई थी

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

और तत्पश्चात् मधुवन में भी देश परित्याग की आज्ञा हुई मैने देह और देश परित्याग की दोनों ही आज्ञा का पालन नहीं किया। अब तीसरी आज्ञा जो लोक में प्रसिद्ध है संन्यास ग्रहण पूर्वक गृह परित्याग की उसका पालन मैंने किया है यद्यपि पूर्व की दो आज्ञाओं का पालन नहीं किया इससे अपराध बना है परन्तु तीसरी आज्ञा के पालन करने से उन दोनों आज्ञाओं का भी पालन इससे हो जाता हैं अतः अपराध नहीं है।।5–6।।

पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोहं न चान्यथा।
लौकिकप्रभुवत्कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन।।7।।

अन्वयः– अहं सेवकः अन्यथा न तत्र पश्चात्तापः कथं च कृष्णः लौकिकप्रभुवत् कदाचन न द्रष्टव्यः।।7।।

अर्थः– दो आज्ञाओं का उल्लंघन किया उस अपराध के कारण प्रभु फल देने में विलंब करें तो पश्चात्ताप होगा इस सन्देह का निराकरण इस श्लोक में करते हैं। मैं तो प्रभु का सेवक हूँ अन्य जैसा नहीं हूँ इसलिये फल के विलंब में भी पश्चात्ताप क्यों करूँ। स्वामी कृष्ण को भी लौकिक स्वामी की तरह नहीं देखना चाहिये अर्थात् हमारा सेवक स्वामी सम्बन्ध लौकिक नहीं है।।7।।

सर्व समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखीभव।
प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहान्न प्रेष्यते वरे।।8।।
तथा देहे न कर्त्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा।।8.5।।

अन्वयः– भक्त्या सर्वं समर्पितं कृतार्थः असि सुखी भव यद्वत् प्रौढ़ा अपि दुहिता स्नेहात् वरे न प्रेष्यते तथा देहे न कर्त्तव्यं अन्यथा वरः न तुष्यति।।8।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः– हे अन्तःकरण! भक्ति से तेने सब कुछ प्रभु को समर्पित कर दिया है अतः तू कृतार्थ हो गया है तू पूर्व की तरह ही सुखी हो जा। जैसे अज्ञानी लोग पति के यहाँ जाने योग्य प्रौढ़ कन्या को स्नेह के कारण वर के पास नहीं भेजते हैं उस प्रकार तुझे भी देहत्याग के विषय में विलम्ब नहीं करना चाहिये विलम्ब करने से जैसे वर अप्रसन्न होता है उसी प्रकार प्रभु अप्रसन्न होंगे।।8.5।।

लोकवच्चेत्स्थिर्मे स्यात् किंस्यादितिविचारय।।9।।

अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मागाः कथञ्चन।

इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः।।10।।

चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत्।।10.5।।

अन्वयः– (हे अन्तःकरण) लोकवत् चेत् में स्थितिः स्यात् किं स्यात् इति विचारय अशक्ये हरिः एव अस्ति कथञ्चन मोहं मा गाः श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य चित्तं प्रति इति हितं वचः यत् आकर्ण्य भक्तः निश्चिन्ततां व्रजेत्।।10.5।।

अर्थः– हे अन्तःकरण अन्य लौकिक पुरुषों की तरह मेरी भी यदि स्थिति हो जाय तो फिर क्या होगा इसका तू विचार कर अर्थात् सर्वनाश ही हो जायेगा इसका तेने विचार किया है? अशक्य कार्य में हरि ही पुरुषार्थ सिद्ध करने वाले हैं। अतः मुझे किसी प्रकार का मोह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार श्रीकृष्ण के दास श्रीवल्लभाचार्य का अन्तः करण के प्रति जो हितकर वचन हैं उसको सुन कर निश्चिन्त हो जाय।।10.5।।

इति श्रीवल्लभाचार्यकृतोऽन्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(24) विवेकधैर्याश्रय

विवेकधैर्ये सततं रक्षरणीये तथाश्रयः
विवेकस्तु "हरिः" सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ।।1।।

अन्वयः— विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथा आश्रयः रक्षणीयः हरिः तु निजेच्छातः सर्वं करिष्यति (इति) विवेकः ।।1।।

अर्थः— विवेक और धैर्य सदा रखने चाहिये तथा आश्रय भी रखना चाहिये। श्रीहरि अपनी इच्छा से सब करेंगे अथवा निज का अर्थ भक्त होता है तो भक्त की इच्छा से सब करेंगे इसको विवेक कहते हैं।।1।।

प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च ।।2।।

अन्वयः— स्वाम्यभिप्रायसंशयात् प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् हि तस्य सर्वत्र सर्वं च सर्वसामर्थ्य एव ।।2।।

अर्थ :— जिस वस्तु को हम चाहते हैं स्वामी उस वस्तु को देना चाहता है या नहीं यह संदेह जब है तो हमारी प्रार्थना से भी क्या लाभ होगा। अर्थात् कुछ फल नहीं होगा। इससे ऐसा न समझें कि प्रभु दे नहीं सकते इसलिये नहीं देते। भगवान् के लिये सर्वत्र सब वस्तु लभ्य (प्राप्य) है और सब वस्तुओं के देने का सामर्थ्य भी है। अतः दृढ़ता के साथ सेवा करें।।2।।

अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्व भावनात्।
विशेषत श्चेदाज्ञा स्यादन्तः करणगोचरः ।।3।।
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः— स्वाम्यधीनत्वभावनात् अभिमानः च संत्याज्यः अन्तः करणगोचरः चेत् विशेषतः आज्ञा स्यात् तदा विशेषगत्यादिभाव्यं दैहिकात् तु भिन्नम् ।।3।।

अर्थः— सर्व समर्पण के अनन्तर ऐसा समझना चाहिये कि यह मेरे देह आदि सब तो स्वामी (भगवान्) के अधीन है। अतः देह आदि को अपना नहीं मानना चाहिये। भगवान् सब भक्तों के अन्तः करण में विराजते हैं अतः सेवा आदि के विषय में अथवा स्वप्नादि के द्वारा कोई विशेष आज्ञा हो तो उसके अनुसार सेवा सामग्री आदि करना परन्तु स्वयं के देह से सम्बन्धित कोई आज्ञा हो तो उसे भगवान की आज्ञा नहीं समझना।।3।।

आपद्गत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा ।।4।।

अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम्।

विवेकोऽयं समाख्यातोधैर्यं तु विनिरूप्यते।।5।।

अन्वयः आपद्गत्यादिकार्येषु सर्वथा हठः त्याज्यः सर्वत्र अनाग्रहः (कर्त्तव्यः) धर्माधर्माग्रदर्शनं (कर्त्तव्यं) अयं विवेक समाख्यातः धैर्यं तु विनिरूप्यते।।4—5।।

अर्थ :— यदि धन का संकोच हो तो उस अवस्था में ऋण करके भी मैं ऐसा मनोरथ करूंगा इस प्रकार के हठ का परित्याग कर दें। सेवा का परित्याग करके भी मैं हवन कार्य करूँगा ऐसा आग्रह भी नहीं करना। सेवा के अनवसर में वे कार्य करने एवं श्रुत्युक्त स्मृत्युक्त और भगवद्धर्म के बलाबल का विचार कर के अपने अधिकारानुसार कार्य करना इसे विवेक कहते हैं अब धैर्य का निरूपण किया जाता है।।4—5।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा।

तक्रवद्देहवदभाव्यं जडवद्गोपभार्यवत्॥6॥

अन्वयः– आमृतेः सर्वतः सदा त्रिदुःखसहनं धैर्य तक्रवत्, देहवत् जडवत् गोपभार्यवत् भाव्यम् ॥1॥

अर्थ :– मरणापर्यन्त सब ओर से आने वाले आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक परीक्षा के लिये भगवान् के द्वारा दिये हुए दुःखों को सहन करना धैर्य कहा जाता है। देहाध्यास के परित्याग के लिये घी निकाली हुई छाछ में जैसे मोह नहीं रहता है उसी प्रकार देह में मोह न रखना। आध्यात्मिक दुःख के सहन करने के समय जड़भरतजी के धैर्य का विचार करना उनका देवी के सामने बलिदान करने लगे थे उस समय उन्होंने किसी भी प्रकार का प्रयत्न न कर उस दुःख को सहलिया। इसी प्रकार जब भगवान् परीक्षा के लिये दुःखों का भोग कराते हैं तो उसको भी गोपस्त्री की तरह सहन करना। इसकी आख्यायिका इस प्रकार है एक राजा की रानी थी वह किसी एक पामर से स्नेह करने लगी एक दिन उसने कहा मैं राजाको मार डालूंगी और तेरी भार्या हो जाऊँगी। उस पामर को किसी वन में छोड़ आयी और महल में आकर राजा को मारकर जब पीछी वन में लौटी तो जिसकी वह भार्या बनना चाहती थी उसे सर्प डस गया जिससे उसकी मृत्यु हो गई तब वह इधर–उधर भटकती हुई किसी देश में जाकर गणिका हो गई। वहाँ उसने अज्ञान से अपने पुत्र से भोग किया प्रसंग से जब ज्ञात हुआ कि यह तो मेरा पुत्र है तब उसे ग्लानि हुई और मरने के लिये चिता में प्रवेश किया किन्तु अग्नि का ताप उससे सहा न गया तो वहाँ से निकलकर किसी गोप की भार्या हो गयी। वहाँ गौरस बेचकर अपनी जीविका चलाने लगी। एक

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दिन अपनी सहेलियों के साथ छाछ बेचने को निकली तो मार्ग में कोई ऐसा विघ्न आया कि जिसके कारण सबके भांडे फूट गये सभी गोपियां दुःख मनाने लगी। वह तो हंसने लगी तब सबने पूछा अरे नुकसान होने पर भी हंस रही है दुःख नहीं मनाती तब उसने अपने सारे वृतान्त को एक श्लोक में कह सुनाया – "हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं देशान्तरे विधिवशात् गणिकाऽस्मिजाता। पुत्रं पतिं समधिगम्य चितां प्रविष्टा शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम्।।" जिस प्रकार उस गोपी की छाछ के विषय में उदासीन भावना थी उसी प्रकार देह में भी उदासीन भावना रखना ।।6।।

प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत्।

भार्यादीनां तथान्येषामसतश्चाक्रमं सहेत्।।7।।

अन्वयः – यदच्छातः चेत् प्रतीकारः सिद्धः भवेत् आग्रही न भवेत् भार्यादीनां च अन्येषां च आक्रमं सहेत्।।7।।

अर्थ :– भगवान् की इच्छा से अनायास यदि दुःखों का उपाय हो जाता है तो दुःखों को सहन करने का आग्रह न करें। सेवा निर्वाह के लिये स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी एवं अन्य सेवक आदि के द्वारा होने वाले अपमान को सहन कर ले।।7।।

स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत्।

अशूरेणापि कर्त्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात्।।8।।

अन्वयः – स्वयं इन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत् स्वस्य असामर्थ्यभावनात् अशूरेण अपि कर्त्तव्यम्।।8।।

अर्थः– अपनी इन्द्रियों के द्वारा भोगे जाने वाले सब प्रकार के विषयों का शरीर वाणी और मनसे परित्याग करें। इन्द्रियों का

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दमन करना मेरीशक्ति के बाहर है ऐसा विचार भी होता हो तथापि जैसे भी हो सके इन्द्रियों का दमन अवश्य करना ही चाहिये।

अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत्।

एतत्सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते।।8।।

अन्वय :– अशक्ये हरिः सर्वम् अस्ति आश्रयतः सर्वं भवेत् अत्र एतत्सहनं उक्तं अतः आश्रयः निरूप्यते।। 9।।

अर्थ :– जो काम अपने से नहीं हो सकता है उस कार्य में हरि ही रक्षा करेंगे। उनके आश्रय से सब कुछ हो जायेगा। यहां तो त्रिदुःखसहन रूप धैर्य को कहा अब आश्रय का निरूपण किया जाता है।।1।।

एहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः।

दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे।।10।।

भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चापि क्रमे कृते।

अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः।।11।।

अन्वयः – ऐहिके पारलोके च दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे सर्वथा हरिः शरणं भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तः च क्रमे कृते अपि वा अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा हरिः शरणम्।।10–11।।

अर्थ :– इसलोक सम्बन्धी और परलोक कार्य में दुःखों की निवृत्ति में तथा अज्ञात के द्वारा बनने वाले पाप में राजचौर आदि के भय में अथवा नरकसम्बन्धी भय में मनोरथों की आपूर्ति में सब प्रकार से हरि ही रक्षक हैं। भक्तों के द्रोह में, भक्ति के अभाव में और भक्तों के द्वारा अपमानित होने पर भी अथवा अशक्य और

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सुशक्य सभी में सब प्रकार से श्रीहरि ही रक्षक हैं।।10–11।।

अहंकारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथांऽतेवास्यतिक्रमे।।12।।
अलौकिकमनः सिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् ।।13।।

अन्वयः– अहंकारकृते च एव पोष्यपोषणरक्षणे च एव पोष्यातिक्रमणे तथा अन्तेवास्यतिक्रमे अलौकिकमनः सिद्धौ सर्वार्थे हरिः शरणं एवं सदा चित्ते भाव्यं च वाचा परिकीर्तयेत् ।।12–13।।

अर्थः – कभी किसी काम के सम्पन्न होजाने पर यह काम मैंने किया है इस प्रकार का अहंकार होने पर जो अपने पोष्य, स्त्री, पुत्र आदि हैं उनकी रक्षा में यदि पोष्य, स्त्री, पुत्र आदि ने अपना अपमान किया हो उस समय तथा शिष्य ने अपमान किया हो उस समय और अलौकिक मन के बन जाने पर सब प्रकार की सिद्धि में श्रीहरि मेरे रक्षक है इस प्रकार सर्वदा मनमें विचार करना तथा मुंह से भी इसी प्रकार कहना चाहिये।।12–13।।

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत्।।14।।

अन्वयः– अन्यस्य भजनं तत्र स्वतः गमनं एव च कार्यमात्रे अपि ततः अन्यत्र प्रार्थना विवर्जयेत्।।14।।

अर्थ :– अन्य देव का भजन तथा वहाँ स्वतः जाना अथवा किसी के कहने से उनको रक्षक समझना, कार्यमात्र के लिये भी प्रभु से अथवा अन्य देव से प्रार्थना का परित्याग करना।।14।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा वाधकस्तु सः।
ब्रह्मास्त्र चातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः ।।15।।

अन्वयः – अविश्वासः तु न कर्तव्यः स सर्वथा बाधकः ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ निर्ममः सन् प्राप्तं सेवेत ।।15।।

अर्थ :– भगवान् की शरण ग्रहण करने में अविश्वास नहीं करनाअविश्वास सब प्रकार से बाधक है अच्छा नहीं है। इस विषय में ब्रह्मास्त्र और चातक की भावना करनी चाहिये। जैसे मेघनाद ने हनुमानजी को ब्रह्मास्त्र में बांध लिया था किन्तु उसे ब्रह्मास्त्र पर भरोसा न होने से हनुमानजी मुक्त हो गये और बाद में उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो गया। इसमें अविश्वास महादोष का कारण होता है। इस विषय में दृष्टान्त दिया। इसी प्रकार विश्वासमात्र सब कार्य का साधक होता है इसमें चातक का दृष्टान्त हैं प्रभु में अविश्वास न कर जो भी अपने को मिलता है उसीका ममता रहित होकर सेवन करें।।15।।

यथाकथंचित् कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि।
किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम्।।16।।

अन्वय :– उच्चावचानि कार्याणि अपि यथा कथच्चित् कुर्यात् बहुना वा प्रोक्तेन किं हरिं शरणं भावयेत्।।16।।

अर्थः– लौकिक वैदिक छोटे बड़े सब कार्य भी जैसे बन सके उस प्रकार से करे। अधिक क्या कहें केवल श्रीहरि ही मेरे रक्षक हैं ऐसा विचार करें।।16।।

एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम्।
कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुस्साध्या इति मे मतिः ।।17।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वय :– एवं सर्वेषां सर्वदा हितं आश्रयणं प्रोक्तं हि कलौ भक्तयादिमार्गा दुस्साध्या इति मे मतिः (अस्ति)।।17।।

अर्थः– इस प्रकार सब के लिये सर्वदा हितकारी भगवान् का आश्रय कहा गया है। क्योंकि कलियुग में भक्ति जिन के आदि में है ऐसे प्रावाहिक, भक्तिमार्ग, मर्यादाभक्तिमार्ग और पुष्टिभक्ति मार्ग ये दुःसाध्य हैं अतः आश्रय ही हितकारी हैं ऐसी मेरी बुद्धि है। क्योंकि प्रह्लादजी ने कहा है – भगवान् तो अनन्यजनों के ऊपर ही स्नेह करने वाले हैं। अतः जब तक अन्य का आश्रय होगा तब तक भगवान् भी अपनी कृपाभरी दृष्टि से उस जीव को नहीं देखेंगे। 'यावदन्य श्रयस्तावद्भगवानपि तं नरम्। आलोकयेन्न कृपया अनन्यजनवत्सलः' अन्य का जब तक भजन होगा तब तक अच्छी प्रकार से आश्रय की सिद्धि नहीं होगी।।17।।

इति श्रीवल्लभाचार्यप्रोक्तं विवेकधैर्याश्रयं सम्पूर्णम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

25 कृष्णाश्रय

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि।
पाषण्डप्रचुरेलोके कृष्ण एव गतिर्मम ।।1।।

अन्वयः – खलधर्मिणि कलौ सर्वमार्गेषु नष्टेषु पाषण्डप्रचुरे लोके मम कृष्ण एव गतिः।।1।।

अर्थ :– दुष्ट धर्म वाले इस कलियुग में वेदोक्त सब मार्ग लुप्त हो गये हैं। लोकमे भी पाखण्ड की प्रचुरता हो गयी है। अतः मेरे श्रीकृष्ण (हरि) ही रक्षक हैं।।1।।

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्पीडा व्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम।।2।।

अन्वयः– देशेषु म्लेच्छाक्रान्तेषु पापैकनिलयेषु सत्पीड़ा व्यग्रलोकेषु मम कृष्ण एव गतिः ।।2।।

अर्थः– सभी देशों में म्लेच्छ छाये हुए हैं और देश पाप ही के घर बन गये हैं सज्जनों को दुःखी देख कर सभी लोग अधीर हो गये हैं अतः श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं।।2।।

गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम।।3।।

अन्वय :– गंगादितीर्थवर्येषु इह दुष्टैः एव आवृतेषु तिरोहिता धिदैवेषु मम कृष्ण एव गतिः।।3।।

अर्थ :– गङ्गाजी आदि जो श्रेष्ठ तीर्थ हैं उन्हें यहाँ दुष्टों ने घेर रखा है उनके अधिष्ठाता देवता सब तिरोहित हो गयें हैं ऐसी स्थिति में मेरे श्रीकृष्ण ही रक्षक हैं।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अहंकारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु।

लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम।।4।।

अन्वयः– सत्सु अहंकारविमूढेषु लाभपूजार्थयत्नेषु पापानुवर्तिषु कृष्णः एव मम गतिः।।4।।

अर्थ :– सज्जनलोग अहंभाव के कारण मूढ़ हो गये हैं और हमें लाभ कैसे मिले और हमारी पूजा हो इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं एवं पापों का अनुसरण कर रहे हैं। अतः कृष्ण ही मेरे रक्षक हैं।।4।।

अपरिज्ञाननष्टेषु मन्त्रेष्ववव्रतयोगिषु।

तिरोहितार्थवेदेषु कृष्ण एव गतिर्मम।।5।।

अन्वयतः– मन्त्रेषु अपरिज्ञाननष्टेषु अव्रतयोगिषु तिरोहितार्थवेदेषु कृष्ण एव मम गतिः।।5।।

अर्थः– अज्ञान के कारण वैदिक एवं अन्य सब मन्त्र नष्ट हो गये हैं। योगीलोग ब्रह्मचर्य आदि व्रत का पालन नहीं करते। वेदों का अर्थ तिरोहित होगया है। अतः श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं।।5।।

नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु।

पाषण्डैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम।।6।।

अन्वयः– सर्वकर्मव्रतादिषु नानावादविनष्टेषु पाषण्डैकप्रयत्नेषु मम कृष्ण एव गतिः।।6।।

अर्थ :– सब कर्म व्रत आदि अनेक प्रकार के वाद विवाद से नष्ट हो चुके हैं और कर्म एवं व्रत का अनुष्ठान पाखण्ड के लिये होने लग गया है अतः मेरे रक्षक श्रीकृष्ण ही हैं।।6।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः।

ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम।।7।।

अन्वयः– अजामिलादिदोषाणां नाशकः ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः अनुभवेस्थितः कृष्णः एव मम गतिः।।7।।

अर्थ :– अजामिल जैसे पापियों के भी दोषों को नष्ट कर दिये इस कारण से जिन्होंने अपनेमाहात्म्य को प्रकट कर दिया है ऐसे भगवान जो अनुभव में स्थित हैं वे श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं।।7।।

प्राकृताः सकलादेवा गणितानन्दकं बृहत्।

पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम।।8।।

अन्वयः – सकलाः देवाः प्राकृताः बृहत् (अपि) गणितानन्दकं पूर्णानन्दः हरिः तस्मात् मम कृष्ण एव गतिः।।8।।

अर्थ :– सब देवता प्राकृत हैं (भगवच्छक्ति के अधीन हैं) अक्षरब्रह्म भी गिने हुए आनन्दों वाला है पूर्णानन्द तो श्रीहरि हैं इसलिये मेरे कृष्ण ही रक्षक हैं।।8।।

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः।

पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम।।9।।

अन्वयः– निवेकधैर्यभक्तयादिरहितस्य विशेषतः पापासक्तस्य दीनस्य ममकृष्ण एव गतिः ।।9।।

अर्थ :– विवेक–धैर्य भक्ति आदि कोई जिसमें नहीं है और केवल पाप में आसक्त है उस मुझ दीन के श्रीकृष्ण ही रक्षक हैं।9।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत्।

शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्।।10।।

अन्वयः – सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्र एव अखिलार्थकृत् अस्ति (तम्) शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं अहं विज्ञापयामि ।।10।।

अर्थ :– जो सब प्रकार के सामर्थ्य से युक्त है और सब जगह भक्तों के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करता है उस शरणागत की रक्षा करने वाले कृष्ण से मैं प्रार्थना करता हूँ।।10।।

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत् कृष्णसन्निधौ।

तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण इति श्रीवल्लऽभोऽब्रवीत्।।11।।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः कृष्णाश्रयः सम्पूर्णः।

अन्वय :– यः इदं कृष्णाश्रयं स्तोत्रं कृष्णसन्निधौ पठेत् तस्य कृष्णः आश्रयः भवेत् इति श्रीवल्लभ अब्रवीत्।।11।।

अर्थ :– जो भक्त इस कृष्णाश्रयस्तोत्र को कृष्ण की सन्निधि में पढ़ेगा उसको श्रीकृष्ण का आश्रय हो जायेगा ऐसा श्रीवल्लभाचार्यजी ने कहा है।।11।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

26 चतुःश्लोकी

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्यायऽमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन।।1।।

अन्वयः – सर्वदा सर्वभावेन व्रजाधिपः भजनीयः स्वस्य अयं एव धर्मः क्व कदाचन अपि अन्यः न।।1।।

अर्थ :– सर्वकाल में सर्वभाव (पति–पुत्र–धन–घर सब श्री कृष्ण ही है इस भाव) से श्री कृष्ण की सेवा करनी चाहिये। भक्तों का यही धर्म है वर्णाश्रम आदि किसी अवस्था में और किसी समय भी अन्य धर्म नहीं हैं।।1।।

एवं सदा स्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति।
प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत्।।2।।

अन्वया :– सदा स्वकर्तव्यं एवं (हरिः) स्वयं एव करिष्यति हि प्रभुः सर्वसमर्थः ततः निश्चिन्ततां व्रजेत्।।2।।

अर्थ :– सर्वदा भगवदीयों का कर्त्तव्य सर्वभाव से भगवान् की सेवा करना ही है। फल आदि का देना ये तो स्वयं श्रीहरि करेंगे। क्योंकि प्रभु सर्व समर्थ हैं अतः ऐहिक और पारलौकिक सब कामों में निश्चिन्त रहना चाहिये।।2।।

यदि श्री गोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि।।3।।

अन्वयः– यदि श्रीगोकुलाधीशः सर्वात्मना हृदि धृतः ततः लौकिकै वैदिकैः अपि अपरं किं (इति) ब्रूहि।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थ :— यदि श्री गोकुल के स्वामी (कृष्ण) को सर्वात्मभाव से हृदय में धारण कर लिया तो फिर उससे बढ़कर लौकिक और वैदिक फल क्या हो सकता यदि इससे बढ़कर कोई हो तो तू ही बता दे।।3।।

अतः सर्वात्मना शश्वद्गोकुलेश्वर पादयोः।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः।।4।।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता चतुःश्लोकी सम्पूर्णा।

अन्वयः— अतः शश्वत् गोकुलेश्वरपादयोः सर्वात्मना स्मरणं च भजनं अपि न त्याज्यं इति मे मतिः ।।4।।

अर्थ :— इसलिये निरन्तर श्रीगोकुलेश्वर भगवान् श्री कृष्ण के चरणों का सर्वात्मभाव से स्मरण तथा सेवन करना, इसका कभी त्याग न करना ऐसी मेरी बुद्धि है ऐसा आचार्य चरण कहते हैं ।।4।।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

27 भक्तिवर्द्धिनी

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्तथोपायो निरूप्यते।
बीजभावे दृढे तु स्यात्त्यागाच्छ्रवण कीर्तनात्।।1।।

अन्वयः – यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथा उपायः निरूप्यते बीजभावे दृढे (सति) त्यागात् श्रवणकीर्तनात् तु भक्तिः प्रवृद्धा (स्यात्)

अर्थः– जिस प्रकार से भक्ति अत्यन्त बढ़े उसके उपाय का निरूपण किया जाता है। बीज (भगवान का) भाव जब दृढ़ हो जाता है तो वासना सहित घर आदि की विस्मृति हो जाती है और तदनन्तर श्रवण कीर्तन से वह भक्ति बढ़ती है।।1.।।

बीजदार्ढ्य प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः।
अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः ।।2।।

अन्वयः – बीजदार्ढ्यप्रकारः तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृतः पूजया श्रवणादिभिः कृष्णं भजेत्।।2।।

अर्थ :– भगवद्भाव के दृढ़ होने का प्रकार तो यह है कि गृहस्थाश्रम में रहकर अपने वर्णाश्रम धर्मों का पालन करते हुए अन्यकार्यों में आसक्ति छोड़कर प्रेमपूर्वक भगवान् कृष्ण की पूजा (सेवा) और श्रवण कीर्तन करे इससे भक्ति बीज की दृढ़ता होती है।2।।

व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा।
ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत्।।3।।
बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नाऽपि नश्यति।। 3½।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः— व्यावृतः अपि हरौ चित्तं (आधाय) श्रवणादौ सदा यतेत् ततः प्रेम आसक्तिः च व्यसनं यदा भवेत् (तदा) तत् शास्त्रे दृढं बीजं उच्यते यत् न अपि नश्यति।।3।।

अर्थः— अशक्ति आदि के कारण से वर्णाश्रम धर्मों का पालन नहीं बन सकता हो तो भी भगवान् में चित्त को लगाकर श्रवण कीर्तन आदि करने का यत्न करना चाहिये ऐसा करने से हरि में प्रेम, आसक्ति और व्यसन जब हो जाते हैं इसमें भक्ति ही उत्कृष्ट कारण है उसे शास्त्र में बीज का दृढ़ भाव कहा है और जो बीजभाव दुःसंग या कालादिक बल से भी नष्ट न हो सके उसे ही दृढ़ समझना।।3।।

स्नेहाद्रागविनाशः स्यादासक्तया स्याद्गृहारुचिः।।4।।

गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्वं च भासते।

यदा स्याद्व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात्तदैव हि।।5।।

अन्वयः— स्नेहात् रागविनाशः स्यात् आसक्तया गृहारुचिः स्यात गृहस्थानां बाधकत्वंच अनात्मत्वं भासते यदा कृष्णे व्यसनं तदा एक कृतार्थः स्यात् हि ।।4—5।।

अर्थ :— भगवान् में प्रेम होजाने से जगत् के पदार्थों से अनुराग नष्ट हो जाता है और जब प्रभु में आसक्ति हो जाती है तब घर में अरूचि हो जाती है मन नहीं लगता। और जितने भी घरके पदार्थ हैं वे प्रभु के प्रेम में बाधक और उनमें अनात्मता हैं प्रभु सम्बंधी नहीं है ऐसा दीखने लगता है। जब कृष्ण में व्यसन हो जाता है तब ही वह कृतार्थ होता है।।4—5।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तादृशस्यापि सततं गृहस्थानं विनाशकम्।

त्यागं कृत्वा यतेद्यस्तु तदर्थार्थैकमानसः।।6।।

लभेत सुदृढां भक्तिं सर्वतोप्यधिकां पराम्।।6।।

अन्वयः— तादृशस्य अपि सततं गृहस्थानं विनाशकं (तस्मात्) त्यागं कृत्वातु यः तदर्थार्थैकमानसः यतेत् सुदृढां सर्वतः अपि अधिकां परां भक्तिं लभते।।6।।

अर्थः— कृतार्थ होजाने पर भी यदि निरन्तर वह घर में रहता है तो उसका घरमें रहना प्रभु के स्नेह को मिटाने वाला है। इसलिये गृह आदि का त्याग कर जो भक्त फलरूपा भक्ति के भी फलरूप श्रीकृष्ण में मनको दृढ़ता से लगाने का यत्न करता है तो वह सुदढ़ और सबसे अधिक पराभक्ति को प्राप्त करता है।।6।।

त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात्तथान्नतः।।7।।

अतस्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः।

अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति।।8।।

अन्वयः— त्यागे दुःसंसर्गात् तथा अन्नतः बाधकभूयस्त्वं अतः हरिस्थाने तत्परैः तदीयैः सह स्थेयं (यद्वा) अदूरे वा विप्र— कर्षे (स्थेयं) यथा चित्तं न दुष्यति।।7—8।।

अर्थः— केवल त्याग मात्र से ही किसी पुरूषार्थ की सिद्धि नहीं होती। अदृष्ट आदिके कारण दुःसंग से तथा असमर्पित अन्न के भक्षण से प्रभु से उस प्रकार का प्रेम होने में अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों के होने की संभावना है इसलिये ज़हाँ निरन्तर सेवा का प्रवाह चलता हो ऐसे स्थान में भगवदीयों के साथ रहना चाहिये अथवा उस स्थान से पासमें या दूरमें रहना चित्तमें दोष उत्पन्न न हो इस तरह रहना।।7—8।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सेवायां वा कथायां वा यस्याऽऽसक्तिर्दृढा भवेत्।

यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मे मतिः।।9।।

अन्वयः— यस्य सेवायां वा कथायां वा दृढ़ा आसक्तिः यावज्जीवं भवेत् तस्य नाशः क्व अपि न (स्यात्) इति मे मतिः।।9।।

अर्थ :— जिस भक्त की प्रभुसेवा में या प्रभु की कथा में दृढ़ आसक्ति जीवनपर्यन्त होती है उसका नाश (पतन) कभी नहीं हो सकता ऐसी मेरी (श्रीवल्लभाचार्य चरणों की) बुद्धि है।।9।।

बाधसंभावनायां तु नैकान्ते वास इष्यते।

हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः।।10।।

अन्वयः बाधसंभावनायांतु एकान्ते वासः न इष्यते हरिस्तु सर्वत्र रक्षां करिष्यति न संशयः ।।10।।

अर्थ :— गृहादि का त्याग करके हरिस्थान में रहने पर यदि बाधाओं की संभावना हो तो एकान्त में रहना अच्छा नहीं है और घर में रहने से अनेक विघ्न आयेंगे ऐसा सोचना भी ठीक नहीं हरि सब जगह रक्षा करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं।।10।।

इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्वं निरूपितम्।

य एतत्समधीयेत तस्यापि स्याद् दृढा रतिः ।।11।।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचित भक्तिवर्द्धिनी सम्पूर्णा।

अन्वयः – इति एवं गूढ़तत्वं भगवच्छास्त्रं निरूपितं यः एतत् समधीयेत तस्य अपि हरौ दृढा रतिः स्यात्।।11।।

अर्थ :— इस प्रकार गूढ़तत्ववाले भगवत् शास्त्र का निरूपण मैंने किया। इसका जो कोई अध्ययन करेगा उसका भी श्रीहरि में दृढ अनुराग होजायेगा।।11।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

28 जलभेद

नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान्।
भावान् विंशतिधा भिन्नान्सर्वसन्देहवारकान्।।1।।

अन्वयः – हरिं नमस्कृत्य तद्गुणानां विभेदकान् विंशतिधा भिन्नात् सर्वसन्देहवारकान् भावान् वक्ष्ये।

अर्थ :– श्रीहरि को नमस्कार कर के श्रीहरि के गुणों को अलग–अलग बताने वाले और बीस प्रकार से अलग–अलग फल साधनआदि के सब सन्देहों को दूर करने वाले ऐसे जीवों के भावों को मैं कहूंगा।।1।।

गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तो हि जले मताः।

अन्वयः – यावन्तः भेदाः जले मताः तावन्तः तु गुण भेदाः हि।

अर्थः– तैत्तिरीय संहिता में जितने भेद जल के माने गये हैं उतने ही श्रीहरि के भक्तोंके गुणोंके भेद हैं ऐसा निश्चय है।।1।।

गायकाः कूपसंकाशा गन्धर्वा इति विश्रुताः।।2।।
कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेऽपि संमताः।।2½।।

अन्वयः – गन्धर्वा इति विश्रुताः गायकाः रूपसंकाशाः यावन्तः कूपभेदाः तावन्त ते अपि संमताः।।2½।।

अर्थ :– गन्धर्वनाम से प्रसिद्ध जो भगवान के गुणों का गान करते हैं उन्हें कुए के जल के समान जानना उत्तम मध्यम आदि भेद से जैसे कुए के जलों में भेद होता है उसी प्रकार गायक भक्तों में भी उत्तम मध्यम अनेक भेद होते हैं।2½

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कुल्याः पौराणिकाः प्रोक्ताः पारम्पर्ययुता भुवि।।3।।
क्षेत्रप्रविष्टास्ते चाऽपि संसारोत्पत्तिहेतवः।।3½।।

अन्वयः— भुवि पारम्पर्ययुताः पौराणिका कुल्याः प्रोक्ताः ते च अपि क्षेत्रप्रविष्टाः संसारोत्पत्तिहेतवः (भवन्ति)।।3½।।

अर्थ :— पृथ्वीपर परम्परा से युक्त हरि के गुणों का गान करनेवाले पौराणिक हैं वे कुल्या (नहर के) जल के समान होते हैं ऐसा समझना जैसे नहर का जल स्थान पान आदि के उपयोग में आता है वैसे ही पौराणिकों के भाव का भी हरिभक्ति में उपयोग होता है। परन्तु वह नहर का जल यदि खेत में प्रवेश करता है तो उससे जैसे धान आदि उत्पन्न होता है उसी प्रकार यदि पौराणिक एवं गन्धर्व स्त्री शरीर आदि में आसक्त हो जाय तो केवल अहन्ता ममतात्मक संसार की उत्पत्ति के कारण बन जाते हैं।।3½।।

वेश्यादिसहितामता गायका गर्तसंज्ञिताः।।4।।
जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः।

अन्वयः— वेश्यादिसहिताः मत्ताः गायकाः गर्तसंज्ञिताः नीचाः गायनोपजीविन तु जलार्थं एव गर्ताः ।।4½।।

अर्थः— जो गायक वेश्या आदि को साथ में रखकर मदोन्मत्त होकर जो भगवान के गुणों को गाते हैं वे गायक गर्त (गड्डे) के जल के समान हैं जैसे गर्त का जल सत्पुरूषों के काम में नहीं आता है उसी प्रकार उन वेश्या, लम्पट प्रमादी गायकों का भाव भी सत्पुरूषों के लिये ग्राह्य नहीं होता। जाति और धर्म आदि से जो नीचे हैं वे झूठे जल को इकट्ठा करने के लिये बनाये गये गड्डे के जल के समान हैं जैसे उस उच्छिष्ट जल का कोई भी स्पर्श तक नहीं करता उसी प्रकार वे गायक भी अग्राह्य ही होते हैं।।4½।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ह्रदास्तु पण्डिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्पराः ।।5।।

सन्देहवारकास्तत्र सूदा गम्भीरमानसाः।

अन्वयः – भगवच्छास्त्रतत्पराः पण्डिताः तु ह्रदाः प्रोक्ताः तत्र गम्भीरमानसाः सन्देहवारकाः सूदाः।

अर्थः– भगवच्छास्त्रतत्पराः पण्डिताः तु ह्रदाः प्रोक्ताः तत्र गम्भीरमानसाः सन्देहवारकाः सूदाः।

अर्थः– भागवत गीता आदि शास्त्रों में तत्पर ऐसे शास्त्रीय ज्ञानवाले पण्डित तो ह्रदय (ह्रद) के जल के समान होते हैं जैसे ह्रद का जल उत्तम होता है उसी प्रकार उन पण्डितों का भाव भी उत्तम और उपयोग के योग्य होता है। उन ह्रद एवं पण्डितों में भी जो गम्भीर होते हैं वे ह्रद और पण्डित भी गंभीर मनवाले तथा सन्देह को दूर करने वाले होते हैं वे तो सुन्दर स्वच्छ मीठे जल के ह्रद के समान हैं।।5½।।

सरःकमलसम्पूर्णाःप्रेयुक्तास्तथा बुधाः ।।6।।

अल्पश्रुताःप्रेमयुक्ता वेशन्ताः परिकीर्तिताः।

अन्वयः– प्रेमयुक्ता तथा बुधाः सरः कमलसम्पूर्णाः (आपः) प्रेमयुक्ता अल्पश्रुताः बुधाः वेशन्ताः परिकीर्त्तिताः।

अर्थः– भगवत्प्रेम से युक्त तथा भगवत् शास्त्र में तत्पर जो पण्डित हैं वे सरोवर में कमल से पूर्णजल के समान हैं। जिस प्रकार वह जल सुगन्ध से पूर्ण होता है उसी प्रकार उन पण्डितों का भाव भी प्रेमयुक्त होता है और जो थोड़े प्रेम तथा थोड़े ज्ञान वाले विद्वान होते हैं वे छोटे तालाब के जल के समान कहे गये हैं। छोटे तालाब का जल किसी समय गदला हो जाता है उसी

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रकार थोड़े प्रेम और थोड़े ज्ञान वाले पण्डितों का भाव भी दुःसंग से विकृत हो सकता है।।6½।।

कर्मशुद्धाः पल्वलानि तथाल्पश्रुतभक्तयः।।7।।

योगध्यानादिसंयुक्ता गुणा वर्ष्याः प्रकीर्त्तिताः।

अन्वयः– तथा अल्पश्रुतभक्तयः कर्मशुद्धाः पल्वलानि योगध्यानादिसंयुक्ताः वर्ष्याः गुणाःप्रकीर्तिताः।

अर्थः– उसी प्रकार जिनने थोड़ा शास्त्र का श्रवण किया है और भक्ति भी जिनमें थोड़ी है जो कर्म से शुद्ध हैं वे भक्त छोटी तलाइयों के जल के समान हैं। जैसे तलाई का जल स्थायी नहीं रहता उसी प्रकार उनका भाव भी दुसंग आदि से नष्ट हो सकता है। जो अष्टांग योग और ध्यान आदिसे युक्त है उन गुणों को वर्षा के जल के समान समझना जैसे वर्षा का जल सर्वत्र फैलकर सबके उपयोग में आता है उसी प्रकार उनका भाव भी सब के उपयोग में आता है।।।7½।।

तपोज्ञानादिभावेन स्वेदजास्तु प्रकीर्तिताः।।8।।

अन्वयः– तपोज्ञानादिभावेन तु स्वेदजाः प्रकीर्तिताः।

अर्थः– जो तप ज्ञान आदि के भाव से युक्त है वे स्वेदज (पसीने से उत्पन्न) जल के समान है। जैसे स्वेदजल अच्छे व्यवहार में न आकर केवल उसीके शरीर को शीतल करता है इसी प्रकार कर्म में श्रद्धा रखने वालों का भाव औरों के लिये ग्राह्य न होकर केवल उन्हीं को शुद्ध करता है।।8।।

अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः।

कादाचित्काः शब्दगम्याः पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः।।8।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः– अलौकिकेन ज्ञानेन ये हरे गुणाः प्रोक्ताः कादाचित्काः तु शब्दगम्याः ये हरेः गुणा पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः।

अर्थः– भगवान की कृपा से प्राप्त होने वाले अलौकिक ज्ञान से जो भगवान के गुण कहे गये हैं वे किसी समय ही शब्दगम्य होते हैं उन्हें सोते (झरने) से पड़ने वाले जल के समान समझना चाहिये जैसे पर्वत से गिरते हुए जल के शब्द से वहाँ जल है ऐसा ज्ञान होता है किन्तु शब्द के अभाव में ज्ञान नहीं होता इसलिये उन्हें कादाचित्क कहते हैं।।8।।

देवाद्युपासनोद्भूताः पृष्वा भूमेरिवोद्गताः।

अन्वयः– देवाद्युपासनोद्भूताः भूमेः उद्गताः पृष्वा इव।

अर्थ :– शिव दुर्गा आदि देवताओं की उपासना से उत्पन्न हुए जो गुण हैं वे पृथ्वी में से निकले हों इस प्रकार से दीखने वाले ओस के जलके समान हैं। ओस का जल यद्यपि भूमि में से नहीं निकलता है तथापि वैसा दिखाई देता है। इसी प्रकार उन देवताओं के उपासना के भाव भी न तो वे उपास्य देवता के हैं और न उपासकों के हैं तथापि वे वैसे दिखाई देते हैं इसलिये उपासक उन भावों को अपना मानकर अहंकार करने लगते हैं अतः ऐसे लोगों का संग करना ठीक नहीं।।9½।।

साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः।।10।।

प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पन्दमानाः प्रकीर्तिताः।

अन्वयः– साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पन्दमानाः प्रकीर्तिताः।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थ : – अपने–अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार वैदिक साधनों के प्रकार से जो नवधा भक्तिमार्ग है उससे जब प्रेम की पूर्णता होती है उस प्रेम की पूर्ति से जिनके हृदय में भगवान् के धर्मों की स्फूर्ति (उत्पत्ति) होती है वे झरने के जल के समान है। जिस प्रकार झरने का जल सभी कार्यों में उपयुक्त होता है। उसी प्रकार उनका संग करना भी प्रशंसनीय है।।10½।।

यादृशास्तादृशाः प्रोक्ता वृद्धिक्षयविवर्जिताः।।11।।

स्थावरास्ते समाख्याता मर्यादैकप्रतिष्ठिताः।

अन्वयः– यादृशाः प्रोक्ताः तादृशाः (एव) वृद्धिक्षंय विवर्जिताः मर्यादैकप्रतिष्ठिताः ते स्थावराः समाख्याताः।

अर्थः– जिनका वर्णन पूर्व श्लोक में किया गया है वैसे भक्त जिनका भाव किसी भी कारण से घटता बढ़ता नहीं है और जो मर्यादा में प्रतिष्ठित हैं ऐसे भक्त स्थावर (सदा स्थिर रहने वाले) जल के समान हैं।।11½।।

अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा।।12।।

संगादिगुणदोषाभ्यां वृद्धिक्षययुता भुवि।

निरन्तरोद्गमयुता नद्यस्ते परिकीर्तिताः।।13।।

अन्वयः – अनेकजन्मसंसिद्धाः जन्मप्रभृति सर्वदा संगादि गुणदोषाभ्यां भुवि वृद्धिक्षययुताः निरन्तरोद्गमयुक्ताः ते नद्यः प्रकीर्त्तिताः।।12–13।।

अर्थ – जो अनेक जन्मों में अच्छी सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं और जो सदा जन्म से लगाकर सर्वदा सत्संग, दुःसंग आदि के

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

गुण और दोषों से पृथ्वी पर क्षय और वृद्धि को प्राप्त करते रहते हैं और निरन्तर जिनमें भगवान के गुणानुवादों का उद्‌गम होता रहता है उन्हें बहते हुए नदी के जल के समान समझना चाहिये।।12–13।।

एतादृशाः स्वतन्त्राश्चेत्सिन्धवः परिकीर्तिताः।

अन्वयः एतादृशाः चेत् स्वतन्त्राः सिन्धवः परिकीर्तिताः

अर्थः– पूर्व में बताये गये जैसे ही गुण यदि स्वतन्त्र जिनमें होते हैं तो वे महा नदी सिन्धु के जल के समान समझने चाहिये।

पूर्णा भगवदीया ये शेषव्यासाग्निमारुताः ।।14।।

जडनारदमैत्राद्यास्ते समुद्राः प्रकीर्तिताः।

अन्वयः– शेषव्यासाग्निमारुताः जडनारमैत्राद्याः ये पूर्णाः भगवदीयाः ते समुद्राः प्रकीर्तिताः।

अर्थ :– शेषजी जो भगवान के गुणों का गान करते रहते हैं और शय्या आदि के भाव से भगवान की आराधना करते हैं। व्यासजी जो निरन्तर भगवान् के धर्मों का ही निरूपण करते रहते हैं। भगवान के मुखरूप अग्नि जो सर्वांश में सर्वरूप से कृष्ण ही है। हनुमानजी, जड़भरतजी, नारदजी, मैत्रेयजी ये पूर्ण भगवदीय हैं इन्हें समुद्र के जल के समान समझना समुद्र के दृष्टान्त का अभिप्राय यह है कि समुद्र में जैसे चन्द्रमा को देखकर उतुंग तरंगे उठती हैं उसी प्रकार से भक्त भी भगवान के मुखचन्द्र का दर्शन् कर भावविभोर हो जाते हैं।।14½।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

लोकवेदगुणैर्मिश्रभावेनैके हरेर्गुणान् ।।15।।

वर्णयन्ति समुद्रास्ते क्षाराद्याः षट् प्रकीर्तिताः।

गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानन्दरूपिणः।।16।।

सर्वानेव गुणान् विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः।

तेऽमृतोदाः समाख्यातास्तद्वाक्पानं सुदुर्लभम्।।17।।

अन्वयः— एके लोकवेदगुणैः मिश्रभावेन हरिः गुणान् वर्णयन्ति ते क्षाराद्याः षट् समुद्राः प्रकीर्तिताः ये विचक्षणाः गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानन्दरूपिणः विष्णोः सर्वान् एव गुणान् वर्णयन्ति ते अमृतोदाः समाख्याताः तद्वाक्पानं सुदुर्लभम्।

अर्थ :— इन्हीं में से कितनेक लोकमिश्र भावसे, वेदमिश्र भाव से और गुणामिश्र भावसे हरि के गुणों का वर्णन करते हैं क्रमशः क्षर दधिमण्डोद सुरोद क्षीरोद, घृतोद, इक्षुरसोद इन छः समुद्रों के जल के समान कहे गये हैं। परन्तु जो अत्यन्त बुद्धिमान भक्त हैं वे सत्व आदि सब गुणों से अतीत रूप से शुद्ध सच्चिदानन्दरूप विष्णु के सभी गुणों का वर्णन करते हैं वे अमृत समुद्र के जलके समान कहे गये हैं। उनकी अमृतवाणी का पान करना तो बहुत ही दुर्लभ है।।115—16—17।।

तादृशानां क्वचिद्वाक्यं दूतानामिव वर्णितम्।

अजा मिलाकर्णनवद् बिन्दुपानं प्रकीर्तितम्।।18।।

अन्वयः— दूतानां इव तादृशानां वाक्यं क्वचिद् वर्णितं अजामिलाकर्णनवत् बिन्दुपानं प्रकीर्तितम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः– विष्णुदूतों के वाक्य की तरह जिनका कहीं वर्णन हैं और अजामिल के सुनने की तरह जिनका कहीं श्रवण है ऐसे भक्तों के वाक्य कहीं–कहीं मिलते हैं अतः वे बिन्दुजल पान के समान कहे गये हैं।।18।।

रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा।
तदा लेहनमित्युक्तं स्वानन्दोद्गमकारणम्।।18।।

अन्वयः– यदा रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं तदा स्वानन्दोद्गमकारणं लेहनं इति उक्तम्।

अर्थ :– जब संसार के स्नेह का और अज्ञान का तथा काम क्रोध आदि को उत्पन्न करने वाले भावों का सब प्रकार से नाश कर देता है उस श्रवण को लैहन (चाटने का) जल कहा गया है। क्योंकि ऐसा श्रवण अपने अन्दर आनन्द के उद्गम का कारण होता है।।11।।

उद्धृतोदकवत्सर्वे पतितोदकवत्तथा।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चापि तथात्मनः।।20।।

अन्वयः– उक्तातिरिक्तवाक्यानि तथा सर्वे उद्धृतोदकवत् पतितोदकवत् फलं अपि आत्मनः तथा ।।20।।

अर्थः– अमृतोदकतुल्यसे अतिरिक्त जितने वाक्य हैं अथवा उनके कहने वाले वक्ता हैं वे उद्धृतोकवत् हैं। (पात्र में निकाले हुए जल के समान हैं) अथवा भूमि में पड़े हुए जल के समान हैं। अर्थात् निकाला हुआ जल पात्र के अनुसार ही होता है उसी प्रकार उनका भाव भी उनके अनुसार ही होता है। ऐसे वाक्यों के भाव का फल भी वैसा ही होता है अर्थात् स्वल्प ही होता है।।20।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इति जीवेन्द्रियगता नानाभावगता भुवि।

रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः।।21।।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो जलभेदः समाप्तः।

अन्वयः— इति रूपतः फलतः एव भुवि नानाभावगतो जीवेन्द्रियगताः विष्णोःगुणाःनिरूपिताः।।21।।

अर्थः— इस प्रकार रूपसे फल से ही पृथ्वी के ऊपर जल नानाभाव को जैसे प्राप्त हो गये। इसी प्रकार जीव में इन्द्रियों में प्राप्त हुए विष्णु के गुणों का भी नानाभावों से निरूपण किया।।22।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

29 पञ्चपद्यानि

श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसा रतिवर्जिताः।
अनिर्वृतालोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः।।1।।

अन्वयः – श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसाः (अन्यत्र) रतिवर्जिताः लोकवेदे अनिर्वृताः श्रवणोत्सुकाः ते मुख्याः।।1।।

अर्थः– जो श्रीकृष्ण के भजन में विक्षिप्तमन (तन्मय) होते हैं जिनका अन्य किसी में अनुराग नहीं होता है और जिनको लोक में तथा वेद में संतोष का अनुभव नहीं होता हो और जिनकी भगवद्गुणों के सुनने में उत्कण्ठा हो वे मुख्य अधिकारी हैं।।1।।

विक्लिन्नमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविह्वलाः।
अर्थैकनिष्ठास्ते चापि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः।।2।।

अन्वयाः– ये तु विक्लिन्नमनसः भगवत्स्मृतिविह्वलाः श्रवणोत्सुकाः अर्थैकनिष्ठाः अपि ते मध्यमाः।

अर्थः– और जो गद्गदहृदय वाले हैं तथा जो भगवान् की याद आते ही विह्वल हो जाते हैं। ऐसे हरिगुण के श्रवण में उत्सुक मोक्ष में जिनकी अधिक निष्ठा होती है वे मध्यमाधिकारी कहे गये हैं।।2।।

निःसंदिग्धं कृष्णतत्वं सर्वभावेन ये विदुः।
तत्वावेशात्तु विकला निरोधाद्वा न चान्यथा।।3।।
पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा।
अन्यासक्तास्तु ये केचिदधमाः परिकीर्तिताः।।4।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः– ये कृष्णतत्वं निःसंदिग्धं सर्वभावेन विदुः तु आवेशात् वा निरोधात् विकलाः च अन्यथा न तु ये केचित् कदाचित् पूर्णभावेन पूर्णार्थाः तु सर्वदा न अन्यासक्ताः ते अधमाः परिकीर्तिताः।

अर्थः– जो अधिकारी कृष्ण के तत्व को निःसन्दिग्ध रूप से सर्वभाव से जानते हैं और जो भगवान् के आवेश से अथवा निरोध (प्रपंच विस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति) होने से विह्वल हो जाते हैं और किसी कारण से जो विह्वल नहीं होते। ऐसे जो कोई हैं कदाचित् पूर्णभाव से अपने को कृतार्थ मानते हैं सर्वदा उनमें पूर्णभाव नहीं रहता और जो अंन्य में आसक्त होते हैं वे अधम अधिकारी कहे जाते हैं।

अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाःश्रवणादिषु।
देशकालद्रव्यकर्तृ मन्त्रकर्म प्रकारतः।।5।।

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितानि पंचपद्यानि।

अन्वयः– देंशकालद्रव्यमन्त्रकर्मप्रकारतः श्रवणादिषु अनन्यमनसः ते मर्त्याः उत्तमाः।

अर्थः– देश काल, द्रव्य, मन्त्र और कर्म के प्रकार से श्रवण आदिमें किसी प्रकार से अन्य मनवाले नहीं होते हैं वे मनुष्य उत्तम अधिकारी कहते जाते हैं।।5।।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

30 संन्यासनिर्णय

पश्चात्तापनिवृत्यर्थं परित्यागो विचार्यते।
स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः।।1।।
कर्ममार्गे न कर्तव्यः सुतरां कलिकालतः।
अत आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वाद्विचारणा।।2।।

अन्वयः— पश्चातापनिवृत्यर्थं परित्यागः विचार्यते स विशेषतः भक्तौ ज्ञाने मार्गद्वितये प्रोक्तः कर्ममार्गे कलिकालतः सुतरां न कर्तव्यः अतः आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वात् विचारणा (क्रियते) ।।1–2।।

अर्थः— पश्चाताप की निवृत्ति के लिये सन्यास का विचार कियाजाता है। वह सन्यास विशेष करके भक्ति और ज्ञान इन दो मार्गों में कहा गया है। कर्म मार्ग में तो कलिकाल के कारण किसी भी तरह सन्यास नहीं करना चाहिये। अतः सबसे पहले भक्तिमार्ग में जो सन्यास करना चाहिये। उसका विचार किया जाता है।।1–2।।

श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्त्तव्यश्चेत्स नेष्यते।
सहायसंगसाध्यत्वात्साधनानां च रक्षणात्।।3।।
अभिमानान्नियोगाच्च तद्धर्मैश्च विरोधतः।

अन्वयः श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं सः कर्त्तव्यः चेत् न इष्यते सहायसंगसाध्यत्वात् च साधनानां रक्षणात् च अभिमानात् तद्धर्मैः विरोधतः न कर्तव्यः ।।3½।।

अर्थ :— भक्तिमार्ग में सन्यास लेना चाहिये क्योंकि उसमें श्रवण आदि भक्ति अच्छे प्रकारसे हो सकेगी ऐसा यदि कहते हो तो ठीक नहीं श्रवणादि भक्ति किसी सहायक के होने पर ही हो सकती है तथा उसमें साधनों की भी रक्षा करनी पड़ती है सन्यास में ये बन नहीं

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सकते और सन्यास में अभिमान आजाने से भक्ति धर्मो (दीनता) से विरोध है इसलिये सन्यास भक्तिमार्ग में नहीं लेना।। 3½।।

गृहादेर्बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि ।।4।।
अग्रेऽपि तादृशैरेव संगो भवति नान्यथा।
स्वयंच विषयाक्रान्तः पाषण्डी स्यात्तु कालतः।।5।।
विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः।
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः।।6।।

अन्वय :— गृहादेः बाधकत्वेन यदि साधनार्थं (त्याग क्रियतेतदपि) अग्रे अपि तादृशैः एव संगः भवति अन्यथा न तु कालतः विषयाक्रान्तः स्वयं च पाषण्डी स्यात् विषयाक्रान्तदेहानां हरेः आवेशः सर्वथा न अतः अत्र भक्तौ स धने त्यागः सुखावहः न।

अर्थः— घर आदि भगवान् की आसक्ति में बाधक है इसलिये यदि साधन सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये सन्यास किया जाता है तो भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि आगे भी भगवान् में जिनका प्रेम नहीं है उन्हीं के साथ संग होने की संभावना होती है। भक्तों का संग होगा ऐसी तो आशा ही नहीं है। क्योंकि यह कलियुग है इसमें सभी लोग विषयों से घिरे हुए हैं अतः ऐसे लोगोंके संगसे स्वयं भी पाखण्डी हो जायेगा। जो विषयाक्रान्त जीव हैं उनमें भगवान का आवेश सर्वथा नहीं हो सकता अतः यहाँ भक्ति के साधन में त्याग (सन्यास) सुख देने वाला नहीं हो सकता।।4—5—6।।

विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते।
स्वीयबन्धनिवृत्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा।।7।।

अन्वयः— विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते। च स वेषः अत्र स्वीयबन्धनिवृत्यर्थं अन्यथा न ।।7।।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थ :– श्रीहरि के विरह का अनुभव करने के लिये यदि त्याग किया जाता है तब तो वह प्रशंसा के लिये योग्य है और त्रिदण्ड काषाय वस्त्र आदि धारण भी अपने कुटुम्बी स्त्री, पुत्र आदि के बन्धन से निवृत्ति हो जाय इसके लिये हो तो उचित है अन्यथा तो उचित नहीं है। ।8। ।

कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्।
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते।।8।।

अन्वयः – कौण्डिन्यः गोपिकाः गुरवः प्रोक्ताः च साधनं तत् भावनया सिद्धिः भावः अन्यत् साधनं न इष्यते। ।8। ।

अर्थ :– मर्यादा भक्त श्रीकौण्डिन्य ऋषि और पुष्टि भक्त श्रीगोपिका इन दोनों के त्याग का भाव अनुकरणीय रूपसे गुरु है और उनने जैसा किया है उसी प्रकार त्याग की निरन्तर भावना करनी चाहिये उसीसे वे सिद्ध हुए थे अन्य साधन यहाँ इष्ट नहीं है। ।8। ।

विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं नहि।
ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य बाधकाः।।9।।

अन्वयः– विकलत्वं तथा अस्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं न हि ज्ञानं च गुणाः एवं वर्तमानस्य तस्य बाधकाः। ।9। ।

अर्थः– विरह से विकलता होना (बिना देखे चेन न पड़ना) अस्वस्थ होना (अपनी प्रकृति में न रहना) यह स्वस्थ प्रकृति की दशा नहीं है। यह बात निश्चित है। ऐसी स्थिति जब विरही की हो जाती है तब सब ब्रह्म है ऐसा ज्ञान और गुण इनमें बाधा उपस्थित हो जाती है। अर्थात् विरह दशा में ज्ञान और गुणों का भान ही नहीं रहता। ।9। ।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात्संन्यासेन विशेषितात्।

भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा भवेत्।।10।।

अन्वयः— सन्यासेन विशेषितात् ज्ञानात् सत्यलोके स्थितिः च यत्र (यादृशी) भावना साधनं फलं अपि तथा भवेत् ।।10।।

अर्थः— सन्यास के द्वारा विशेषता से प्राप्त ज्ञान से सत्य लोक में स्थिति होती है। क्योंकि जिस मार्ग की जैसी भावना और साधन होते हैं उनसे फल की प्राप्ति भी वैसी ही होती है।।10।।

तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठन्त्येव न संशयः।

बहिश्चेत्प्रकटः स्वात्मा वह्निवत्प्रविशेद्यदि।।11।।

तदैव सकलोबन्धो नाशमेति न चान्यथा।

अन्वयः — तादृशाः सत्यलोकादौ एव तिष्ठन्ति न संशयः बहिः चेत् प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् यदि प्रविशेत् तदा एव सकलः बन्धः नाशं एति च अन्यथा न।।11½।।

अर्थ :— जिनने सन्यास ग्रहण किया है ऐसे ज्ञानी सत्यलोक आदि में ही रहते हैं। परन्तु भक्तिमार्ग में तो जो यदि बाहर प्रकट हुई अपनी आत्मा (भगवान) लकड़ी के अन्दर से बाहर प्रकट हुई अग्नि जैसे काष्ठ में पुनः प्रवेश करे उसी प्रकार जब भगवान अन्तःकरण में प्रवेश करते हैं तभी उसके सकल बन्धनों का नाश होता है। अन्यथा नहीं होता। अर्थात् लकड़ी के अन्दर रहनेवाली अग्नि जब तक बाहर प्रकट नहीं होती तब तक लकड़ी को नहीं जला सकती उसी प्रकार भगवान अन्तःकरण से बाहर प्रकट होकर अन्तःकरण में प्रविष्ट नहीं होते तब तक उसके बन्धन नष्ट नहीं होते।।11½।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

गुणास्तु संगराहित्याज्जीवनार्थं भवन्ति हि।12।।

अन्वयः— गुणाः तु संगराहित्यात् जीवनार्थं भवन्ति हि।

अर्थ :— श्रवण कीर्तन आदि में आने वाले प्रभु के गुण तो भगवान के विरह में उनके भक्तों को जीवन देने वाले होते हैं यदि भगवान के गुणों का सहारा न हो तो उनके भक्त भगवान् के विरह में मृत्यु को ही प्राप्त हो जाय।।12।।

भगवान् फलरूपत्वान्नाऽत्र बाधक इष्यते।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं दयालुर्न विरुद्ध्यते।।13।।

अन्वयः— फलरूपत्वात् भगवान् अत्र बाधकः न इष्यते स्वास्थ्यवाक्यं न कर्त्तव्यं (यतः) दयालुः न विरुध्यते।।13।।

अर्थः— भक्तिमार्ग में भगवान फलरूप हैं और भाव साधन हैं भाव का प्राकट्य होता है विरह से विरह का अनुभव होने के लिये आचार्यचरण ने त्याग का उपदेश किया है। इसलिये जब तक विरहावस्था का अनुभव न हो उसके पूर्व में ही यदि भगवान अपने स्वरूप का दान कर दें तो भगवान् बाधक हो जायेंगे। भगवान बाधक होना नहीं चाहते। अतः भगवान् ऐसा वचन भी नहीं कहते जिससे स्वस्थता हो। भगवान् तो दयालु हैं इसलिये वे भाव का विरोध नहीं करते। इसीसे तो दयालुता का विरोध नहीं है।।13।।

दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिद्ध्यति नान्यथा।

अन्वयः — अयं परित्यागः दुर्लभः प्रेम्णा सिद्धयति अन्यथा न

अर्थः— इस प्रकार का यह भक्तिमार्गीय सन्यास दुर्लभ है ऐसा त्याग तो प्रभु के प्रेम से ही प्राप्त होता है। और किसी साधन (तप—दान) से प्राप्त नहीं होता।।13½।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ज्ञानमार्गे तु सन्यासो द्विविधोऽपि विचारितः ।।14।।

ज्ञानार्थमुत्तराङ्गञ्च सिद्धिर्जन्मशतैः परम् ।

अन्वयः – ज्ञानमार्गे सन्यासः तु ज्ञानार्थं च उत्तराग द्विविधः अपि विचारितः पर जन्मशतैः सिद्धिः ।।14½।।

अर्थः– ज्ञानमार्ग में जो सन्यास है वहतो ज्ञान होने के लिये तथा ज्ञान होने के अनन्तर दो प्रकार का होता है। परन्तु उन दोनों प्रकार के सन्यास से तथा ज्ञान से सैंकड़ों जन्मों में जाकर सिद्धि प्राप्त होती है। ।।14½।।

ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम् ।।15।।

अतः कलौ स सन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा।

पाषण्डित्वं भवेच्चापि तस्माज्जाने न सन्यसेत् ।।16।।

सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वादिति स्थितम् ।

अन्वयः– यज्ञादिश्रवणात् ज्ञानं च साधनापेक्षं मतं अतः कलौ स सन्यासः पश्चातापाय (भवति) अन्यथा च न पाषण्डित्वं अपि भवेत् तस्मात्कलिदोषाणां सुतरां प्रबलत्वात् ज्ञाने न सन्यसेत् इति स्थितम् ।।15–16½।।

अर्थः– वेदों में कहा गया है कि यज्ञादि के द्वारा चित्तशुद्धि होती है उसके लिये निष्काम यज्ञ करना चाहिये। ज्ञान चित्तशुद्धि के बिना होता नहीं अतः ज्ञान साधनापेक्ष माना गया है। कलियुग में यज्ञादि साधनों का होना बड़ा कठिन है इसलिये कलियुग में संन्यास पश्चात्ताप के लिये होगा। ज्ञानप्राप्ति के लिये नहीं होगा। केवल पश्चात्ताप ही नहीं होगा उसमें पाखण्डीपन भी हो जायेगा। इस कारण से तथा कलियुग के दोष अत्यन्त प्रबल है अतः

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

कलियुग में संन्यास न ले ऐसा शास्त्र में निषेध भी है।।15–16½।।

भक्तिमार्गेपिचेद्दोषस्तदा किं कार्यमुच्यते।।17।।
अत्रारम्भे न नाशः स्याद् दृष्टान्तस्याप्यभावतः।
स्वास्थ्यहेतो : परित्यागाद् बाधः केनाऽस्य संभवेत्।।18।।

अन्वयः– भक्तिमार्गे अपि दोषः तदा किं कार्यं इतिचेत् उच्यते आरम्भे दृष्टान्तस्य अपि अभावतः अत्र नाशः न स्यात् स्वास्थ्यहेतोः परित्यागात् अस्य बाधः केन सम्भवेत्।17–18।।

अर्थः– भक्तिमार्ग में भी सन्यास यदि दोषजनक हो तो फिर क्या करना इस पर कहते हैं। भक्तिमार्गीय सन्यास के आरंभ में नाश की संभावना है ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं मिलता भक्ति मार्ग में स्वास्थ्य के लिये जो परित्याग किया जाता है उसमें तो वासना का भी परित्याग होता है जब वासना नहीं रहेगी तो विषयों का ग्रहण नहीं होगा और विषयों का जब ग्रहण ही नहीं होगा तब बाध की संभावना किससे होगी।।17–18।।

हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे।
अन्यथा मातरो बालान् न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित्।।19।
"ज्ञानिनामपि" वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति।
आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति।।20।।

अन्वयः– अत्र हरिः बाधां कर्तुं न शक्नोति अपरे कुतः अन्यथा मातरः बालान् स्तन्यैः क्वचित् अपि न पुपुषुः ज्ञानिनां अपि (इति) वाक्येन भक्तं न मोहयिष्यति आत्मप्रदः च प्रियः अपि किमर्थं मोहयिष्यति।।19–20।।

अर्थः– इस परित्याग में भगवान भी प्रेम के कारण बाधा नहीं कर सकते तो दूसरे तो कर ही कैसे सकते हैं। यदि भगवान् ही

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बाधा करने लगजाय तो फिर माताएं भी अपने बच्चों को अपने दूध से पोषण नहीं करें अर्थात् ऐसा कभी हो नहीं सकता कि माता अपने बालक का पोषण न करे तब भगवान अपने भक्तों के त्याग में बाधा कैसे करेंगे। ज्ञानियों के चित्त को भी भगवान को माया मोहित कर देती है इस वाक्य से ज्ञानियों को ही वह मोहित करती है भक्त को मोहित नहीं करेगी और भगवान तो जो भक्तों के प्यारे हैं अपने को भी वे भक्त को दे देते हैं वे तो मोहित करेंगे ही क्यों।।19–20।।

तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम्।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थादिति मे निश्चता मतिः।।21।।
इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनिश्चितम्।
सन्यासावरणं भक्तावन्यथा पतितो भवेत्।।22।।
इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः सन्यासनिर्णयः समाप्तः।

अन्वयः – तस्मात् उक्तप्रकारेण परित्यागः विधीयतां अन्यथा स्वार्थात् भ्रश्यते इति मे निश्चिता मतिः इतिवल्लभेन कृष्णप्रसादेन भक्तौ सन्यासावरणं विनिश्चितं अन्यथा पतितः भवेत्।।21–22।।

अर्थ :– कलियुग में ज्ञानमार्ग एवं कर्ममार्ग में परित्याग (सन्यास) दोषयुक्त है इसलिये ऊपर बताये गये प्रकार से भक्ति मार्ग में परित्याग करना चाहिये। ऐसा न करने से भगवान के अनुग्रहरूप स्वार्थ से भ्रष्ट (पतित) हो जायेगा। ऐसी मेरी निश्चित मति है। इस प्रकार श्रीवल्लभाचार्य ने भक्तिमार्ग में सन्यास ग्रहण को उत्तम माना है ऐसा करने से काल आदि भी अनुकूल हो जायेंगे बाधा नहीं करेंगे।।21–22।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

31 निरोधलक्षण

यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले।

गोपिकानां तु यद्दुःखं स्यान्मम क्वचित्।।1।।

अन्वयः– गोकुले यशोदायाः च नन्दादीनां च यद् दुःखं तु गोपिकानां यद् दुःखं तद् दुःखं क्वचित् मम स्यात्।।1।।

अर्थः– गोकुल में श्रीयशोदाजी और नन्द आदि को जो दुःख (विरह) होता था तथा श्री गोपीजनों को जिस प्रकार की विरह वेदना होती थी। वैसा दुःख (विरह वेदना) मुझे भी कभी होगा।।1।।

गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम्।

यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति।।2।।

अन्वयः– गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनां यत् सुखं समभूत् तत् सुखं किं भगवान् में विधास्यति।।2।।

अर्थः– गोकुल में गोपियों को और सभी ब्रजवासियों को जो सुख हुआ था क्या वैसा सुख भगवान् मेरे को भी देंगे।।2।।

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा।

वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्।।3।।

अन्वयः – वृन्दावने वा गोकुले उद्धवागमने यथा सुमहान् उत्सवः जातः तथा मे मनसि क्वचित् (स्यात्) ।।3।।

अर्थः– वृन्दावन में अथवा गोकुल में उद्धवजी के आने पर यशोदाजी गोपिका आदि को जो आनन्द प्राप्त हुआ था उसी प्रकार का आनन्द मेरे मन भी कभी होगा।।3।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

महतां कृपया यावद् भगवान् दययिष्यति।

तावदानन्दसन्दोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि।।4।।

अन्वयाः— महतां कृपया भगवान् यावत् दययिष्यति तावत् कीर्त्यमानः आनन्दसन्दोहः सुखाय हि।।4।।

अर्थ :— महापुरूषों (व्रजभक्तों) की कृपासे भगवान श्री हरि जितनी (अपने साथ एक आनंदत्वसंपादन करने वाली) दया करेंगे उतनी ही भगवान के नामों के कीर्तन से जो आनन्द सन्दोह प्राप्त होता है वह सुख करेगा। अर्थात् जब तक भगवान् अपने फलरूप स्वानन्द का दान करेंगे उसके पूर्व भी साधन दशामें भगवान् के नामों का कीर्तन भी वैसा ही आनन्द देने वाला है।।4।।

महतां कृपया यद्वत् कीर्तनं सुखदं सदा।

न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत्।।5।।

अन्वयः— महतां कृपया कीर्तनं यद्वत् सदा सुखदं तद्वत् लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् तथा न।

अर्थः— व्रजभक्तों की कृपा से हृदय से स्फुरित जो हरि गुणगान सर्वदा जितना सुख देते हैं उतना सुख लौकिक कीर्तन जो विधि के द्वारा प्राप्त है उतना आनन्द नहीं देते हैं इसमें दृष्टान्त देते हैं कि जो स्निग्ध (घृतप्लुत) भोजन करता है उसे रूखा भोजन अच्छा नहीं लगता।।5।।

गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते।

यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः।।6।।

अन्वयः – गोविन्दस्य गुणगाने शुकादीनां यथा सुखावाप्तिः प्रजायते तथा आत्मनि न एव अन्यतः कुतः।।6।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः— गोविन्द के गुणगान में शुकदेवजी आदिको जितना सुख उत्पन्न होता है। उतना सुख आत्मज्ञान (मोक्ष) में भी नहीं होता है तो अन्यत्र तो प्राप्त ही कैसे होगा।।6।।

क्लिश्यमानाञ्जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्।

तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ।।7।।

अन्वयः — क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा यदा कृपायुक्तः भवेत् तदा हृदिस्थं सर्वं सदानन्दं बहिः निर्गतं भवेत्।।7।।

अर्थः— गुणगान करते—करते दुःखी हुए अपने भक्तों को देखकर जब भगवान को दया आजाती है तब भक्त के हृदय में विराजमान सदानन्दस्वरूप (श्रीकृष्ण) बाहर प्रकट हो जाते हैं।।7।।

सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः।

हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान्।।8।।

अन्वयः— सर्वानन्दमयस्य अपि कृपानन्दः सुदुर्लभः हृद्गतः स स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः सन् जनान् प्लावयते।।8।।

अर्थः— भगवान् सर्वानन्द मय है तथापि उनका कृपानन्द मिलना बहुत कठिन है। परन्तु भक्तों के हृदय में विराजमान भगवान जब अपने गुणों को सुनते हैं तब पूर्ण होते हुए भी अपने गुणगान करनेवाले भक्तों को आनन्द से आप्लुत (सराबोर) कर देते हैं।।8।।

तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरूद्धैः सर्वदा गुणाः।

सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः।।9।।

अन्वयः— तस्मात् सदानन्दपरैः निरुद्धैः सर्वं परित्यज्य सर्वदा गुणाः गेयाः ततः सच्चिदानन्दता (स्यात्)।।9।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थ :– इसलिये सदानन्द (श्रीकृष्ण) में तत्पर जिनका निरोध भगवान् ने अपने में करलिया है। उन भक्तों को लौकिक वैदिक सब साधनों का परित्याग करके सर्वदा भगवान के गुणों का गान करना चाहिये। गुणगान से उनमें सच्चिदानन्द पन प्राप्त हो जाता है।।9।।

अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः।

निरुद्धानां तु रोधायः निरोधं वर्णयामि ते।। 10।।

अन्वयः– अहं रोधन निरुद्धः तु निरोधपदवीगतः निरुद्धानां रोधाय ते निरोधं वर्णायामि।।10।।

अर्थः– मुझे स्वयं भगवान ने निरुद्धों के मार्ग में अंगीकार कर लिया है अतः निरोध की पदवी (फलदशा) को प्राप्त हो गया हूँ अर्थात् श्रीआचार्यचरण का यह कथन है कि मुझे तो भगवान ने सांसारिक पदार्थों का विस्मरण कराकर अपने चरणों में लगा रखा है इसीसे मैं तो निरोधरूप फल को प्राप्त करचुका हूँ किन्तु जो लौकिक में आसक्त है उन अधिकारियों के लिये निरोध का वर्णन करता हूँ। जगत् के स्त्री पुत्र आदि सब को भूलकर केवल प्रभु में ही आसक्त रहना निरोध कहलाता है। महाप्रभुजी अपने किसी सेवक को सम्बोधित करके कहते हैं इसलिये ते शब्द दिया अर्थात् तेरे लिये वर्णन करता हूँ ।।10।।

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे।

ये निरुद्धास्त एवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम्।।11।।

अन्वयः– हरिणा ये बिनिर्मुक्ता ते भवसागरे मग्नाः ये निरुद्धाः ते एव अत्र अहर्निशं मोदं आयान्ति।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अर्थः— जिनका भगवान ने परित्याग कर दिया ऐसे (आसुर) जीव अहन्ता ममतारूप संसार सागर में डूब जाते हैं और जिन जीवों को भगवान अपना समझकर रोकलेते हैं (अपना लेतेहैं) वे यहां अहर्निश (रातदिन) भगवान् के गुणगान का आनन्द लेते रहते हैं।।11।।

संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै।

कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत्।।12।।

अन्वयः— संसारावेशदुष्टानां इन्द्रियाणं हिताय सर्ववस्तूनि ईशस्य भूम्नः कृष्णस्य वै योजयेत्।

अर्थः— अहन्ता ममतारूप संसार का जिनमे आवेश हो गया है रूप—रस आदि तन्मात्राओं में ही जिनका पर्यवसान है ऐसी दुष्ट नेत्र, रसना आदि ज्ञानेन्द्रियों और निषिद्ध अनेक क्रियाओं को करने वाली कर्मेन्द्रियों के हित के लिये इन इन्द्रियों का जिन—जिन विषयों (पदार्थों) से सम्बंध हैं उन सब वस्तुओं को सर्वनियन्ता सर्वत्र व्यापक श्रीहरि में लगादे तथा इन्द्रिय आदि जो भी वस्तु है उनका विनियोग भी श्रीहरि में करे।।12।।

गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः

संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत्सुखम्।।13।।

अन्वयः— मुरवैरिणः गुणेषु सर्वदा आविष्टचित्तानां संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखं (स्यात्)।

अर्थः— मुरनामक दानव के मारने वाले हरि के गुणानुवाद में सदा जिनका चित्तलगा रहता है उसको लौकिक विषयों के वियोग से उत्पन्न होनेवाला दुःख और रोग आदि से उत्पन्न क्लेश दोनों ही नहीं होते और स्वरूपानन्द जिसका अनुभव

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भगवान करते हैं उसका वह अनुभव करता है।।।13।।

तदा भवेद्दयालुत्वमन्यथा कूरता मता।

बाधशङ्कापि नास्त्यत्र तदध्यासोऽपि सिद्ध्यति।।14।।

अन्वय :– तदा दयालुत्वं भवेत् अन्यथा क्रूरता मता अत्र बाधशंका अपि न अस्ति तदध्यासः अपि सिद्धयति।।14।।

अर्थः– जब इस प्रकार वियोग और क्लेश की निवृत्ति हो जाती है तो भगवान में दयालुता सिद्ध होती है अर्थात् भगवान की मेरे ऊपर दया है ऐसा सिद्ध होता है यदि ऐसा नहीं होता है तो यह समझना चाहिये कि मेरे ऊपर भगवान् की कृपा नहीं है। भगवान् के गुणगान करने आदि में कालकर्म आदि के बाध की भी आशंका नहीं रहती और श्रीहरि मेरे हैं और मैं श्रीहरि का हूँ ऐसा अध्यास (भाव) हो जाता है।।14।।

भगवद्धर्मसामर्थ्याद्विरागो विषये स्थिरः।

गुणैहरेः सुखस्पर्शान्न दुःखं भाति कर्हिचित्।।15।।

अन्वयः– भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विषये स्थिरः विरागः (भवति) गुणैः हरेः सुखस्पर्शात् कर्हिचित् दुःखं न भाति ।।15।।

अर्थः– भगवान् के जो ऐश्वर्य आदि धर्म और उनके सामर्थ्य हैं उनका गान करने से विषयों में वैराग्य (अरूचि) स्थिर हो जाता है और गुणानुवाद के प्रभाव से हृदय में प्राप्त श्रीहरि के सुख का स्पर्श होने से कभी भी कोई दुःख नहीं होता।।15।।

एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गादुत्कर्षं गुणवर्णने।

अमत्सरैरलुब्धैश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः।।16।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः— एवंज्ञानमार्गात् गुणवर्णने उत्कर्षं ज्ञात्वा अमत्सरैः च अलुब्धैः सदा (हरेः) गुणाः वर्णनीयाः ।।16।।

अर्थः— इस प्रकार ज्ञानमार्ग की अपेक्षा श्रीहरि के गुणों के वर्णन में श्रेष्ठता है ऐसा जानकर ईर्ष्या और लोभ से रहित होकर हरि के गुणों का वर्णन करना चाहिये।।16।।

हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र हि।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा।।17।।
श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णाप्रिये रतिः।
पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत्।।18।।

अन्वयः— हरिमूर्तिः सदा ध्येया हि संकल्पात् तत्र सदा दर्शनं स्पर्शन स्पष्टं तथा कृतिगती श्रवणं कीर्तनं अपि स्पष्टं कृष्ण प्रिये पुत्रे रतिः पायोः मलांशत्यागेन शेषभाग तनौ नयेत्।।17—18।।

अर्थः — श्रीहरि के स्वरूप का सदा ध्यान करते रहना क्योंकि भावमात्र से उनमें भगवत्स्वरूप का, दर्शन, स्पर्श स्पष्ट होते हैं उसी प्रकार करना, गमन करना श्रवण करना, कीर्तन करना ये स्पष्ट है श्रीहरि का जो प्रिय पुत्र है उससे प्रेम करना। पायु (गुदा) के मलांश का त्याग करके अन्नादि के बाकी रहे भाग को शरीर में प्राप्त करना सब इन्द्रियों को भगवान् में लगाना चाहिये ऐसा जब कहा तो किसी को यह शंका हो कि इन्द्रियों में गुदा भी आ जाती है तो उसका उपयोग कैसे है इसलिये यहां कहा कि वो भी मलांश का त्याग करके शरीर को स्वस्थ रखती हैं जिससे भगवत्सेवा में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती है।।17—18।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते।

तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः।।19।

अन्वयः— यस्य वा यदा भगवत्कार्यं स्पष्टं न दृश्यते तदा तस्य विनिग्रहः कर्तव्यः इति निश्चयः।।19।।

अर्थः— जिन स्त्रीपुत्रादि में अथवा इन्द्रियों में भगवत्कार्य स्प्रष्ट दिखाई नहीं देता हो तब उनका विशेष रूप से निग्रह करना ऐसा निश्चय है।19।।

नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः।

नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम्।।20।।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं निरोधलक्षणं सम्पूर्णम्।

अन्वयः— अतः परतरः मन्त्रः न अतः परतरः स्तवः न अतः परतरा विद्या न अतः परात्परं तीर्थं न।।20।।

अर्थः— निरोध के विषय में इससे बढ़कर और कोई मन्त्र नहीं है और इससे बढ़कर कोई स्तुति नहीं है तथा इससे श्रेष्ठ कोई विद्या नहीं है और न इससे बढ़कर कोई तीर्थ है।।20।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

32 सेवाफल

यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते।

अलौकिकस्य दाने हि चाद्यः सिद्ध्येन्मनोरथः।।1।।

फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोत्र नियामकः।

अन्वयः– यादृशी सेवना प्रोक्ता तत् सिद्धौ फलं उच्यते हि अलौकिकस्य दाने च आद्यः मनोरथ सिद्धयेत्वा फलं वा अधिकारः अत्र कालः नियामकः न।।1½।।

अर्थः– चित्त भगवत्परक होजाय उसे सेवा कहते हैं "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" ये जो सेवा का लक्षण कहा उसकी जब सिद्धि होजाती है तब उसका जो फल होता है उसे कहा जाताहै। सेवा करने पर भगवान जब प्रसन्न होते हैं तो तीन प्रकार का फल देते हैं उत्तम, मध्यम और साधारण। उत्तमफल तो वह है जिसमें भगवान के साथ गाने आदि का अलौकिक सामर्थ्य होना यह फलतो मुख्य भक्तों को ही मिलता है। मध्यम फल है सायुज्य साथ में रहना जैसे गोपों को मिला था। साधारणफल में सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति स्वर्ग में होती है अथवा भूलोक में जैसे उद्धवजी को प्राप्त हुई थी। फल देने में अधिकार या काल नियामक नहीं है किन्तु भगवान् का अनुग्रह ही नियामक है।।1½।।

उद्वेगः प्रतिबन्धो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकः।।2।।

अकर्तव्यं भगवतः सर्वथा चेद् गतिर्न हि।

यथा वा तत्वनिर्धारो विवेकः साधनं मतम्।।3।।

अन्वयः – किन्तु उद्वेगः वा प्रतिबन्धः वा भोगः बाधकः स्यात्

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चेत् भगवतः सर्वथा अकर्तव्यं हि गति– न वा यथा तत्वनिर्धारः (तथा) विवेकः साधनं मतं।।2–3।।

अर्थः– किन्तु किसी प्रकारकी मन में घबराहट का होना, विघ्न आ जाना, और भोग की इच्छा होना ये तीनों फल में बाधक है। भगवान की यदि फल देने की इच्छा न हो तो फिर उसके लिये कोई गति (उपाय) ही नहीं है। तब तो अपने में आसुर पन को समझना चाहिये और उसी के अनुसार ज्ञान तथा ज्ञान के साधनों का आचरण करना चाहिये ऐसा शास्त्र संमत है। अर्थात् उसके लिये तत्व का निर्धार विवेक ही साधन माना गया है।।2–3।।

बाधकानां परित्यागो भोगेप्येकं तथा परम्।
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा।।4।।

अन्वयः– बाधकानां परित्यागः (कर्त्तव्यः) भोगे अपि एकं (लौकिक) तथा निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते महान् (प्रतिबन्धः) सदा।।4।।

अर्थः– उद्वेग, प्रतिबंध और भोग ये तीन जो सेवा में प्रतिबन्धक हैंउनका परित्याग करना चाहिये, परन्तु भोग में भी एक जो लौकिक भोग है उसीका परित्याग करना इसी प्रकार प्रतिबन्ध में भी साधारण प्रतिबन्ध का त्याग करना चाहिये अलौकिक भोग और भगवत्कृत प्रतिबन्ध का त्याग करना तो अशक्य है। क्योंकि अलौकिक भोग उत्तम फल में गिना गया है इससे उसका त्याग नहीं किया जाता है और भगवत्कृत प्रतिबन्ध भी सदा रहता है उसका त्याग तो अशक्त ही है।।4।।

सविघ्नोऽल्पो घातकः स्याद्बलादेतौ सदा मतौ।
द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात्।।5।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अन्वयः— सदा एतौ सविघ्नः अल्पः बलात् घातकः (इति) मतौ द्वितीये संसारविनिश्चयात् सर्वथा चिन्ता त्याज्या।।5।।

अर्थः— सर्वदा लौकिक भोग आधि व्याधि आदि अनेक विघ्नों वाले हैं और अल्प हैं और साधारण प्रतिबन्ध भी अत्यधिक घातक होता है इसलिये लौकिक भोग सविघ्न और अल्प है और दूसरा भोग जिसमें प्रभु ही विघ्न करते हैं उसमें तो संसार की ही प्राप्ति होती है इसलिये सब प्रकार से चिन्ता का परित्याग करना चाहिये क्योंकि भगवान ने गीता में स्पष्ट आज्ञा करदी है "क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु "।।5।।

नन्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम्।

अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन् मनो भ्रमः।।6।।

अन्वयः— आद्ये दातृता नास्ति ननु तृतीये गृहं बाधकं इयं अवश्या भाव्या अन्यत् सर्वमनो भ्रमः।।6।।

अर्थः— यदि पहला उद्वेगरूप प्रतिबन्ध होतो यह समझना चाहिये कि भगवान की फल देने की इच्छा नहीं है और तीसरा जो भोगरूप प्रतिबन्ध आता है तो घर आदि बन्धन करने वाले होते हैं ऐसा समझना चाहिए ऐसा निश्चय है। इस तरह दोनों ही प्रकार के भोग जीव के अधीन नहीं हैं भगवान के ही अधीन हैं ऐसा निश्चित है और कोई कल्पना करना तो मन का भ्रममात्र है।।6।।

तदीयैरपि तत्कार्यं पुष्टौ नैव विलम्बयेत्।

गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मतिः।।7।।

कुसृष्टिरत्र वा काचिदुत्पद्येत स वै भ्रमः।।7½।।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इति श्रीवल्लभाचार्यनिरचितं सेवाफलं सम्पूर्णम्।

अन्वयः– तदीयैः अपि तत्कार्यं पुष्टो न एव विलम्बयेत् गुणक्षोभे अपि एतत् एव द्रष्टव्यं इति मे मतिः वा अत्र काचित् कुसृष्टिः उत्पद्येत सः वै भ्रमः ।।7½।।

अर्थः– भगवदीयो को भी फल और प्रतिबन्ध का विचार करना चाहिये। भगवान अपने अनुग्रह में कभी विलम्ब नहीं करेंगे सत्व आदि गुणों के कारण यदि किसी प्रकारका विकार उत्पन्न होता है तो उस समय भी प्रभुने ही फल देने में विलम्ब किया है ऐसा समझना ऐसी मेरी बुद्धि है। इस मेरे कथन में यदि किसी को सन्देह आदि उत्पन्न होता है तो उसे उनका भ्रम समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
1.	श्रीआचार्यजी श्रीमहाप्रभुजी (श्रीवल्लभाचार्यजी)	1535	वैशाख	कृ.11				1587	आषाढ़	शु.3	श्रीनाथजी का प्राकट्य होने पर मन्दिर बनवाकर सेवा व्यवस्था की। 1576 वै. सुदी 3 अक्षय तृतीया नवीन मंदिर में पाट बिठाया।
2.	श्रीगोपीनाथजी	1567	आश्वि.	कृ.12				1599			आपश्री का प्रारम्भिक अध्ययन श्रीवल्लभ के चरणारविन्द में हुआ, श्रीवल्लभाचार्य के लीला प्रवेश पश्चात् आप आचार्य पदवी पर मात्र तीन वर्ष बिराजे। श्रीनाथजी की सेवा से बंगाली सेवकों हो हटाकर सांचीहर ब्राह्मणों को श्रीनाथजी की सेवा प्रदान की। श्रीगोपीनाथजी को श्रीजगदीश ने हाथ, पकड़कर लीला में ले लिया तथा श्रीबलदेवजी के मुखारविन्द में लीन हो गये।
3.	श्रीगुंसाईजी (श्रीविट्ठलनाथजी)	1572	पौष	कृ. 9				1642	माघ	कृ.7	श्रीनाथजी की सेवा व्यवस्था बांधकर कई नवीन उत्सव किये। मेवाड़ महाराणा उदयसिंह के समय श्रीगुसांईजी सिंहाड़ (नाथद्वारा) अपने अनन्य सेवक चाचा हरिवंश के साथ पधारे।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
4.	श्री पुरुषोत्तमजी 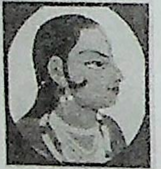	1588	आश्वि.	कृ. 9				1606			श्रीपुरुषोत्तमजी गिरिराज की कन्दरा में पधारे और श्रीजी ने अपने हाथ से पकड़कर सदेह अपनी लीला में अंगीकार कर लिया श्रीपुरुषोत्तमजी का व्यक्तित्व अलौकिक था, अल्पावस्था में ही आप नित्यलीला में पधार गये। कतिपय प्रमाणों के अनुसार आपके पितृ चरण के लीलास्थ होने के पश्चात् आपका लीला मे पधारना हुआ।
5.	श्रीगिरधरजी	1597	कार्तिक	शु. 12				1677	पौष	कृ. 2	श्रीनाथजी को (मथुरा) सतधरा में पधराये। 1623 फा.व. 7 गुरुवार।
6.	श्रीदामोदरजी	1632	श्रावण	शु. 15				1694	कार्ति.	सु. 10	आप वेद वेदान्त के निष्णात विद्वान थे। सकल शास्त्रों का आपने गंभीर अध्ययन किया था, श्रीमद्वल्लभाचार्य के सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय का आपने अनुशीलन किया था, वल्लभ–दर्शन के आप श्रेष्ठ प्रणेता थे।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
7.	श्रीविट्ठलेशरायजी	1657	श्रावण	शु. 14				1711	पौष	कृ. 9	आपका प्रारम्भिक जीवन संघर्षमय रहा। प्रभु श्रीनाथजी की आप पर पूर्ण कृपा थी तथा आपके मस्तक पर श्रीहस्तरखा।मुगल सम्राट ने आपको अतीव सम्मान प्रदान किया।
8	श्रीलालगिरधरजी	1689	वैशाख	शु. 7				1723	श्रावण	शु. 1	आप दैवी सम्पदा के गुणों से युक्त, महान् आचार्य थे, क्षमाशीलता अन्तःकरण की निर्मलता, कष्ट, सहिष्णुता सात्विकता समस्त प्राणियों के प्रति दयालुता आदि गुण आपमें विद्यमान थे। संगीतज्ञ के साथ आप कवि भी थे, आपने अनेक पदों की रचना की।
9.	श्रीदामोदरजी (बड़े दाऊजी) प्रथम	1711	माघ	कृ. 8				1760			श्रीनाथजी को मेवाड़ पधराये एवं वर्तमान मंदिर में श्रीजी को पधराया नाथद्वारा नगर की सर्वप्रथम नींव आपने ही रखी।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
10.	श्रीविट्ठलेशरायजी	1743	भाद्रपद	शु. 6				1793	कार्ति.		मेवाड़ में जन्म लेने वाले प्रथम आचार्य तथा नाथद्वारा मंदिर की व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने वाले थे।
11.	श्रीगोवर्द्धनेशजी	1763	श्रावण	कृ. 10				1819	माघ	कृ. 7	सात स्वरूप का उत्सव व छप्पनभोग किया। आपने अपने जन्म दिवस पर श्रीनाथजी में हांडी उत्सव प्रारम्भ किया।
12.	श्रीगोविन्दजी	1769	पौष	कृ. 11				1830	ज्ये.	शु. 6	श्रीगोवर्द्धनेशजी के कोई पुत्र नहीं होने से लघुभ्राता श्री गोविन्दजी तिलकायित बने।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
13.	श्रीबडे गिरिधरजी	1525	आषाढ़	कृ. 30				1863	वैशाख	शु. 11	माघ कृ. 10 वि.सं. 1858 में श्रीनाथजी को घसियार पधराये, घसियार से पूर्व आपने श्रीनाथजी, श्रीविठ्ठलनाथजी एवं श्रीनवनीतप्रियजी को कुछ समय उदयपुर पधराये। स्नान की सुविधा के लिये गिरधर सारग की नींव डाली।
14.	श्रीदाऊजी (द्वितीय)	1853	आश्विन	शु.4				1882	फा.	कृ. 30	घसियार से श्रीनाथजी को वि.सं. 1864 नाथद्वारा पधराये आपने बारह मास तक दुहेरे मनोरथ किये, आपने गिरधर सागर बंधवाया नगर के चारों ओर एक पर कोटा खिंचवाया साथ ही बड़ाबाग, बड़ाबाजार, मथुरा दरवाजा, रामबोला, जरखण्डी ओर बरखण्डी बनवाये वि.सं. 1878 में आपने लालबाग बनवाया वि.सं. 1878 श्रावण मास में आपने श्रीनवनीत प्रियजी को तीन तिबारी बनास नदी पर व लाल बाग में पधराकर भव्य मनोरथ किये।
15.	श्रीगोविन्दजी	1877	कार्तिक	शु. 14				1902	फा.	कृ. 12	आप द्वितीय पीठ श्रीविठ्ठलनाथजी के घर से गोद आये।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
16.	श्रीगिरिधारीजी	1899	ज्येष्ठ	शु. 13				1959	वैशाख	शु. 14	आपने सम्वत् 1917 में मोतीमहल बनवाया मौवागढ़ एवं नृसिंह बंकट व्यायाम शाला का निर्माण कराया गांवों में गो शालाएं बनवाई।
17.	श्रीगोवर्द्धनलाल जी	1919	भाद्रपद	कृ. 1				1990	आषाढ़	शु. 2	आपने कछवाई का नाला झरनाकुण्ड तथा अन्य कुण्डों का निर्माण कराया, नाथूवास का तालाब खुदवाया सिंहाड़ का तालाब बड़ा करवाया। आपने ही गोवर्धन चिकित्सालय गोवर्धन औषधालय एवं श्रीविद्या विभाग की स्थापना की और अन्य कई जन हित के कार्य किये। आपका कार्यकाल स्वर्णयुग था।
18.	श्रीदामोदर लाल जी	1953	पौष	शु. 6				1992	श्रावण	शु. 15	आपने बनारस जलगाव जैसी विद्वत्सभाओं में सम्मान पाया आपक्रिकेट के भारत प्रसिद्ध खिलाड़ी थे।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
19.	श्रीगोविन्दलालजी	1984	मार्गशीर्ष	कृ. 7				2051	माघ	कृ 4	आपने श्रीनवनीतप्रियजी को श्रीविट्ठलनाथजी में पधराया तथा छप्पनभोग किया तथा सात स्वरूप का उत्सव किया आपने गोविन्द विद्यालय, गोविन्द पुस्तकालय, गोविन्द वाचनालय, राष्ट्रीय विद्यापीठ, सार्वजनिक उद्यान, साहित्य मण्डल, गोविन्दपुरा, वल्लभपुरा, कृष्णकुण्ड, कन्याशाला, साधु सम्मेलन के कार्य किये।
20.	श्रीदाऊजी (श्रीराजीवजी)	2005	पौष	कृ. 1				2056	चैत्र	कृ. 10	आपश्री ने लालन के सुख का विचार करते हुए अनेक मनोरथ किये, आपश्री ने लालन को लालबाग में पथराकर श्रावण मास में हिंडोरा के मनोरथ किये, कछवई बाग में नवनीत प्रियजी, श्रीविट्ठलनाथजी, श्रीमदनमोदनलालजी एवं श्रीद्वारिकाधीशजी पधरा कर (कांकरोली) कुंजफाग खेल का मनोरथ किया एवं मोतीमहल में लाल छात पर लालन को पथराये।
21.	श्रीराकेश जी (इन्द्रदमनजी)	2006	फाल्गुन	शु. 7							विक्रम संवत् 2057 आषाढ़ शुक्लपक्ष 6 (कसूंभी छट्ठ) को आप श्री का आचार्य पद पर तिलकोत्सव सम्पन्न हुआ। संवत् 2058 अधिक मास में श्रीनवनीतप्रियजी को गौशाला में पधराकर अलौकिक मनोरथ किया। ज्येष्ठ कृष्ण 10 रविवार को अमरीका में श्रीवजराज जी का स्वरूप उत्तरी अमरीका पेनसिलबेनिया व्रजस्थान में वि.सं. 2060, 25 मई सन 2002 को पथराया।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्र.	पू. तिलकायितों के नाम की वंशावली	जन्म						लीला संवरण			विशेष
		सम्वत्	मास	दिवस	1	2	3	सम्वत्	मास	दिवस	
22.	चि. श्रीभूपेशकुमारजी (विशालबाबा)	2037	पौष	कृ. 30							पू.आ.व.ति.गो. श्री 108 श्री राकेशजी महाराज श्री के सुयोग्य पुत्र रत्न है। आप तेज संपन्न, कुशाग्रबुद्धि, विलक्षण प्रतिभा, मृदुभाषी तथा उदीयमान भास्कर के रूप में आपश्री को देखा जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

।। श्रीहरिः ।।

"श्री कृष्णः शरणं मम"

अष्टाक्षर महामन्त्र

'श्री कृष्णः शरणं मम' इन आठ अक्षरों के उच्चारण से ही सब कुछ सिद्ध होता है। श्री गुसांई जी श्रीमत्प्रभुचरण "अष्टाक्षर रहस्य निरूपण" नामक ग्रंथ में आज्ञा करते हैं कि श्रीकृष्णनाम सदैव जपना चाहिए। अष्टाक्षर महामंत्र का जप करने से समस्त पाप का नाश एवं परमानन्द की प्राप्ति होती है।

1. 'श्री' से सौभाग्य की प्राप्ति
2. 'कृ' से समस्त पापों का शोषण (नाश) होता है।
3. 'ष्ण' आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक तीन प्रकार के दुःखों का नाश करता है।
4. 'श' पुनर्जन्म न होकर भगवद् चरणविन्द की प्राप्ति होती है।
5. 'र' भगवद् विषय ज्ञान की प्राप्ति।
6. 'ण' श्री कृष्ण परब्रह्म में दृढ़ भक्ति की प्राप्ति।
7. 'म' दीक्षा देने वाले गुरू में प्रीति होती है।
8. 'म' प्रभु के साक्षात्कार की प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इण्डिया ऑफसेट प्रिन्टर्स, अजमेर # 9314393305